केवल तेजी-मंदी के काम का

सर्वतोभद्रचक्र

(अर्घकाण्ड)

स्वभावसरलाव्याख्या सहित

—: 0 :—

व्याख्याकार : —

ज्योतिर्विद् पण्ड्या मोतीलालजी नागर

अर्घकाण्ड-वाचस्पति

प्रस्तावना

चौदह विद्याओं में 'ज्योतिष विद्या' ही एक ऐसी विद्या है, जो वेदाङ्गों में मूर्धन्य होने के कारण सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है। इस विद्या की उपयोगिता को धरातल पर बसनेवाले सभी विचारशील मनुष्यों ने स्वीकार किया है। हमारे जीवन के प्रत्येक कार्य के साथ इस विद्या का घनिष्ट सम्बन्ध है। यद्यपि इस विद्या के जातक, ताजिक, सामुद्रिक, शकुन, केरल, रमल, स्वरोदय आदि कितने ही भेद हैं; तथापि वे सभी भेद गणित और फलित; इन दो नामों से प्रसिद्ध हैं। उनमें भी फलित-भाग की सत्यता को प्रमाणित करनेवाला गणितभाग है। यदि वह गणित-भाग ही कदाचित् मिथ्या हो जाय, तो फिर फलितभाग की विफलता में सन्देह नहीं रहता। इसलिये फलवक्ता का यह मुख्य कर्तव्य हो जाता है कि, वह गणित और फलित; इन दोनों भागों की शास्त्रीय पूर्ण दक्षता प्राप्त करके ही शुभाशुभ फल का निर्णय वा कथन करे। ऐसा करने से उसकी वाणी कभी मिथ्या नहीं होगी।

प्रत्यक्ष देखा जाता है कि, सांसारिक जीवन-निर्वाह के लिये मनुष्य-मात्र को किसी एक व्यापार का आश्रय लेना ही पड़ता है। उसके बिना उसका जीवन नीरस एवं व्यर्थ सा हो जाता है। हां, प्रत्येक व्यापार कार्य में तभी पूर्ण सफलता मिलती है, जब कि व्यापार करने को कर्ता के लौकिक ज्ञान के साथ साथ व्यापारी वस्तुओं की भावी तेजी-मंदी के समय आदि का शास्त्रीय ज्ञान भी प्राप्त कर लिया जाय। अन्यथा केवल मान-नीय कल्पना के आधार पर किये जाने वाले व्यापार में बहुधा हानि हो जाने की अधिक संभावना रहती है।

परमदयालु महर्षियों तथा उनके अनुयायी पूर्वाचार्यों ने जिस प्रकार सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, जीवन-मरण आदि विषयों के ज्ञान

लेने की विधियां शास्त्रों में बतलाई हैं, उसी प्रकार वस्तुमात्र की तेजी-मंदी जानने के लिये भी अनेक प्रकार बतलाये हैं। जिनमें से नरपति-जयचर्योक्त प्रथम अर्घकाण्ड ही एकमात्र सर्वोत्तम एवं सर्वाङ्गपूर्ण प्रकार माना जाता है, जिसमें 'सर्वतोभद्रचक्र' का उपयोग भी केवल ग्रहों के वेधज्ञान के लिये किया जाता है।

मालव—देशान्तर्गत धारापुरी—निवासी राजमान्य प्रख्यात विद्वान् नरदेवजी के ख्यातनामा सुपुत्र नरपति आचार्य ने अनेकों ऋषिप्रणीत ग्रन्थों का सार लेकर, अनुष्टुप् छन्दवाले साढ़े पाँच हजार श्लोकों में विक्रम संवत् १२३२ चैत्र शुक्ल १ प्रतिपदा मंगलवार के दिन 'नरपति-जयचर्या' ग्रन्थ की पूर्ति की थी। उन दिनों ग्रन्थकर्ता नरपति कवि गुर्जर-देशीय महाराज अजयपाल की राजधानी 'अणहिलनगर' में, जिसे आज-कल 'पाटन' कहा जाता है, निवास करते थे ※। जिस प्रकार वेदों के शिक्षा आदि छः अङ्ग हैं, उसी प्रकार इस 'नरपतिजयचर्या' के भी १ स्वरचक्र २ चक्र ३ भूबल ४ मन्त्रबल ५ ज्योतिष और ६ शाकुन; यह ६ अङ्ग हैं ÷। जिनमें फलवक्ता के लिये भविष्यज्ञान की विपुल एवं अमोघ सामग्री भरी पड़ी है।

※"श्रीमत्यणहिलनगरे ख्याते श्रीअजयपालनृपराज्ये।
श्रीमन्नरपतिकविना रचितमिदं तत्रसंस्थेन॥
विक्रमार्कगते काले पक्षाग्निभानु १२३२ वत्सरे।
मासे चैत्रे सिते पक्षे प्रतिपद् भौमवासरे॥
षड्भिरङ्गैश्चकारेदं नृपतीनां जयावहम्।
अनुष्टुपछन्दसां श्लोकैः सार्द्धैः पञ्चसहस्रकैः॥"
(नरपतिजयचर्या—शाकुनाङ्ग)

÷"स्वरचक्राणि चक्राणि भूबलानि बलानि च।
ज्योतिषं शाकुनञ्चेति षडङ्गानि वदाम्यहम्॥"
(नरपतिजयचर्या—शास्त्रसंग्रहाध्याय)

लगभग ३५ वर्ष से कुछ अधिक समय हुआ, कानपुरनिवासी विद्यानुरागी स्वर्गीय सेठ राधाकृष्णजी बागला ने इस 'अर्घकाण्ड' और और 'सर्वतोभद्रचक्र' के अति गूढ़ रहस्यों का यथार्थ अनुसंधान करने के लिये मुझे प्रोत्साहन दिया और मैं तभी से इसकी खोज में प्रवृत्त हो गया। अनेक स्थानों और विद्वानों के ग्रन्थसंग्रह तथा पुस्तकालयों में मूल ग्रन्थ की खोज की गई, परन्तु सर्वत्र यह नरपतिजयचर्या-ग्रन्थ अधिकांश अपूर्ण ही मिला। जिन ग्रन्थों का सार लेकर यह ग्रन्थ निर्माण किया गया है, उन 'सप्तयामल' 'युद्धजयार्णव' 'स्वरसिंह' 'जयपद्धति' 'रणाह्वयतन्त्र' 'वड़वानलविज्ञान' आदि प्राचीन ग्रन्थों का अब नामशेष ही रह गया है। इतना ही नहीं; किन्तु नरपति आचार्य ने अपने इस ग्रन्थरत्न में जिन जिन विषयों के वर्णन करने की प्रतिज्ञा की है और एतदर्थ ग्रन्था-रम्भ में जो एक विस्तृत विषय-सूची दी है, उसके अनुसार भी मूलग्रन्थ नहीं मिलता। वर्तमान समय में उपलब्ध होनेवाली हस्तलिखित वा मुद्रित नरपतिजयचर्या के आरंभवाले चार अंग ही सर्वत्र मिलते हैं, शेष दो अंगों का कहीं ठिकाना तक नहीं। फलतः यह चार अंगवाली नरपति-जयचर्या ही सम्पूर्ण नरपतिजयचर्या मानी जाने लगी। मुद्रित वा अमुद्रित यह ग्रन्थ एक दूसरे से सर्वथा भिन्न ही दीख पड़ता है। किसी में कुछ पाठ और प्रकरण हैं तो किसी में कुछ और ही लेख पाया जाता है। प्रकरणविरुद्ध महाअशुद्ध कितने ही पद्य जहां तहां प्रक्षिप्त भी हो गये हैं। इस ग्रन्थ की 'जयलक्ष्मी' और 'नारहरी' यह दो व्याख्याएँ विशेष प्रसिद्ध हैं। इन दोनों व्याख्याओं के अनुसार भी छपी हुई नरपतिजयचर्या नहीं है। खेद के साथ लिखना पड़ रहा है कि, संशोधक महोदयों ने भी उक्त त्रुटियों का परिमार्जन नहीं किया, प्रत्युत जैसा लेख मिला वैसा ही—ज्यों का त्यों—प्रकाशित करने की प्रकाशक-वर्ग को अनुमति प्रदान कर दी? इन्हीं सब कारणों से इस 'अर्घकाण्ड' और 'सर्वतोभद्रचक्र' के गूढ़ रहस्यों के समझने में बड़ी ही कठिनाइयां

उपस्थित हुई—स्वरोदयशास्त्र के मर्मज्ञ नरपति आचार्य के एतद्विषय मन्तव्यों का ठीक ठीक पता न लग सका। आज मुझे यह लिखते हुए महान् हर्ष हो रहा है कि, काशीनिवासी ज्योतिष्पारदृश्वा माननीय पण्डित प्रवर श्रीयुत विनायकशास्त्री वेताल के सुयोग्य कनिष्ठपुत्र श्रीयुत पण्डित अनन्तरामशास्त्री वेताल के यहां से सम्पूर्ण षडङ्ग नरपतिजयचर्या की दो प्रतियां मिलीं। और सांगवेदविद्यालय काशी के ज्योतिश्शास्त्रप्रधानाध्यापक विद्वत्प्रवर श्रीयुत पण्डित नीलकण्ठशास्त्री के यहां से उनके पूर्वजों द्वारा संगृहीत एक सर्वतोभद्रचक्रसंबंधी अपूर्व संग्रह भी मिला जिनके पूर्वापरपर्यालोचन से कितने ही भ्रमात्मक और विवादास्पद विषयों का वास्तविक समाधान हो गया—इस अर्घकाण्ड तथा सर्वतोभद्रचक्र के अत्यन्त गूढ़ रहस्यों के समझने में बहुत बड़ी सहायता मिली। साधारण दृष्टि से तो यह प्रकरण अतिसरल प्रतीत होता है; किन्तु बात ऐसी नहीं है। मालूम होता है कि, ग्रन्थकार ने इस प्रकरण को सांकेतिक भाषा में लिखा है। जितना ही गहरी दृष्टि से विचार किया जायगा, उतना ही अधिक सफलता के समीप पहुँचते जांयगे।

इस ग्रन्थरत्न पर १ नारहरी २ जयलक्ष्मी ३ स्वरोदयदीपिका और ४ जयश्रीविलास; यह चार संस्कृत टीकाएँ यथासमय हो चुकी हैं। ग्रन्थस्थ द्वादशवार्षिकस्वरप्रकरण के उदाहरणों से विदित होता है कि, पण्डित नरहरि मिश्र ने विक्रम संवत् १५४७ में 'नारहरी' टीका और पाठक हरिवंशसूनु पण्डित महादेव पाठक ने विक्रम संवत् १५७२ में 'जयलक्ष्मी' टीका की रचना की। नेपालदेशीय 'भाटगाँव' के सूर्यवंशीय राजा त्रिभुवनमल्ल के पुत्र जगज्ज्योतिर्मल्ल ने विक्रम संवत् १६८० में 'स्वरोदयदीपिका' नामक टीका का निर्माण किया। चौथी 'जयश्रीविलास' टीका के रचनाकाल का कुछ भी पता नहीं चलता। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि, जयश्रीविलास टीका के प्रणेता गोस्वामी श्रीगोकुलनाथजी काशी के एक प्रकाण्ड विद्वान् थे। उन्होंने ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थों

पर भी टीकाएँ की हैं। सम्भवतः यह जयश्रीविलास टीका अठारहवीं शताब्दी में निर्मित हुई है। इनके अतिरिक्त इस ग्रन्थ पर 'मञ्जरी' 'सारोद्धार' आदि अन्यान्य टीकाएँ भी पाई जाती हैं।

वास्तव में 'नरपतिजयचर्या' एक ग्रन्थरत्न है। इस ग्रन्थ पर हमारा संशोधनकार्य वर्षों से चल रहा है। ऐसे महान् ग्रन्थ को पुस्तक के रूप में प्रकाशित करके ज्योतिषविद्या के प्रेमी जनों के समक्ष रखने का हमारा दृढ़ संकल्प भी है, पर अभी यह नहीं कहा जा सकता कि, यह संकल्प कब और कैसे पूर्ण होगा। ऐसे महान् कार्य के लिये राजा-महाराजा अथवा धनिकवर्ग का आश्रय अपेक्षित होता है। हमारी वर्तमान सरकार तो हाल में ही स्थापित हुई है। उसके सामने इस समय देश को सुरक्षित एवं सर्वात्मना समृद्धिशाली बनाने के लिए इतने प्रश्न उपस्थित हैं कि, वह ऐसे संशोधनकार्य को तुरंत सहायता देने में असमर्थ है। हमारे देश के धनकुबेरों का भी इस ओर कोई लक्ष्य नहीं है। उन्हें तो यह भी पता नहीं कि, संशोधनकार्य क्या होता है और उस के लिये कैसे कैसे भगीरथ-प्रयत्न करने पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त धनिक-वर्ग से प्रगाढ़ संबंध रखनेवाले हमारे ज्योतिर्विद् बन्धुओं ने भी इस विषय में उन्हें कभी ध्यान नहीं दिलाया। यही कारण है कि, हमारे देश के प्रतिभासम्पन्न विद्वानों के हाथों संशोधन-कार्य तथा शास्त्रसमृद्धि नहीं होने पाती। यह हमारा दुर्दैव नहीं तो और क्या कहा जा सकता है!

इस समय हमारे देश में कुछ इनी-गिनी प्रकाशनसंस्थाएँ अवश्य हैं। परन्तु उनके द्वारा विद्वान् संशोधक वा लेखक को उसके ग्रन्थ की कुछ छपी हुई प्रतियां बिना मूल्य बांटने के लिये अवश्य मिल जाती हैं। बस, इसे ही सर्वस्वप्राप्ति मान कर, अपने ग्रन्थ के प्रकाशनमात्र से पुत्रोत्सवानन्द का अनुभव करते हुए अपने को कृतकृत्य समझना पड़ता है। अब अधिक नहीं, थोड़ा समय शेष है, जब कि स्वतन्त्र भारत में एक ऐसा नवयुग आवेगा कि, भारतीय शास्त्र-समृद्धि अवश्य होगी। अभी तो

विद्वान् संशोधकों तथा लेखकों को इसी आशा पर संतोष करना होगा।

अस्तु,नरपतिजयचर्या के द्वितीयाङ्क में सबसे पहिला चक्र 'सर्वतोभद्र' है। अतिप्राचीन हस्तलिखित अधिकांश पुस्तकों में देखा गया है कि, सर्वतोभद्रचक्र में इस अर्घकाण्ड का समावेश नहीं है। मालूम होता है कि कुछ समय के बाद, सर्वतोभद्रचक्र में ग्रहों के वेध के द्वारा मूल्य-निर्णय करने में इस अर्घकाण्ड की उपयोगिता प्रतीत होने पर सर्वतोभद्र-चक्र के अन्त में इस अर्घकाण्ड को भी जोड़ दिया गया है। वास्तव में यह अर्घकाण्ड ग्रन्थकार ने नरपतिजयचर्या के पांचवें ज्यौतिषांग में लिखा है। जैसा कि, ग्रन्थारम्भ में दी हुई ग्रन्थकारकृत विषय-सूची से पता चलता है × । यही कारण है कि, बाद के संग्रहकर्ताओं ने मनमाने पाठ और बहुत से प्रकरणविरुद्ध वचनों का भी संग्रह कर डाला। परिणाम यह हुआ कि, अच्छे अच्छे विद्वान् भी व्यामोह में पड़ गये और इस ग्रन्थ को बड़ी ही उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे। हर्ष का विषय है कि, इधर फिर इस ग्रन्थ की ओर विद्वानों का लक्ष्य हुआ है।

आजकल अर्घकाण्डसहित सर्वतोभद्रचक्र का विद्वत्समाज और व्यापारीवर्ग में मूलग्रन्थ नरपतिजयचर्या से भी बढ़ कर प्रचार हो गया है। किन्तु जैसा यह ग्रन्थ उनके हाथ में है, उसमें बतलाई हुई पद्धति का यथार्थज्ञान न हो सकने के कारण तदनुसार किये हुए निर्णय से विद्वत्समाज और व्यापारीवर्ग को वास्तविक संतोष नहीं हो पाता। इसके कारण भी अनेक हैं। एक तो यह ग्रन्थ लेखदोष से भ्रमोत्पादक भिन्न भिन्न पाठों से युक्त हो जाने के कारण अत्यन्त दुरूह हो गया है। दूसरे ऐसे स्थलों पर टीकाकारों और संशोधक महोदयों ने भी कोई प्रकाश नहीं डाला। उन्होंने ग्रन्थस्थ दुर्बोध विषय को 'सुस्पष्टम्' 'स्पष्टार्थः' 'सुगमम्' इत्यादि

× 'जलयोगोऽर्घकाण्डश्च वर्षमासदिनार्घकृत्'

(नरपतिजयचर्या–शास्त्रसंग्रहाध्याय)

लिख कर छोड़ दिया और सुबोध विषय पर कालम के कालम रंग डाले। तीसरे गुरुपरम्परा से पठन-पाठन की प्रणाली में न रहने से मनमाना उपयोग होने लगा। इन्हीं सब कारणों से किसी भी वस्तु के मूल्य-निर्धारण में बहुत सी त्रुटियां हो जाया करती हैं। अतएव इस अर्घकाण्ड और सर्वतोभद्रचक्र के केवल तेजीमंदी के संबंध में जो त्रुटियां ग्रन्थकार का आशय न समझ पाने के कारण आज हो रही हैं और कुछ का कुछ निर्णय करने का ढंग चल रहा है, उन सब बातों पर शास्त्रीय वास्तविक मन्तव्यों का उद्धरण देकर त्रुटि-पूर्ति की यथाशक्य चेष्टा मैंने अपनी इस 'स्वभावसरला' नामक हिन्दी व्याख्या के द्वारा की है। वाणिज्यसंबंधी भविष्यज्ञान के संबंध में सर्वतोभद्रचक्र की ही लोक में प्रसिद्धि और मान्यता को देखते हुए, मैंने नरपति आचार्य के इस अर्घकाण्ड का नाम 'केवल तेजी मंदी के काम का सर्वतोभद्रचक्र' बदल दिया है। आशा है, विद्व-त्समाज और व्यापारीवर्ग को इसके द्वारा पूर्ण संतोष और लाभ होगा।

व्याख्याकार।

हार्दिक अभिनन्दन

गत वर्ष मुझे बंबई जाने का प्रसङ्ग मिला। वहाँ अनायास पाश्चात्य ज्यतिर्विद्या के प्रकाण्ड विद्वान् 'बॉम्बे एस्ट्रो-लोजिकल सोसाइटी' के भूतपूर्व प्रेसीडेंट, ज्योतिषाचार्य श्रीयुत यशवन्तकेशव प्रधानजी से परिचय हो गया - मैत्री बढ़ी। उन्हों ने सौराष्ट्रदेश की एक विभूति ध्रांगद्रानिवासी सेठ हीरालाल मोतीलाल पुजारा के साथ मेरा सम्बन्ध स्थापित कराया। संमाननीय पुजारा महोदय केवल प्रख्यात एवं कुशल व्यापारी और पुराने रईस ही नहीं हैं; अपि तु ज्योतिषविद्या के तत्वान्वेषी एवं विशेषज्ञ भी हैं। अपने ज्ञान तथा धन का सदुपयोग वे अनेक ज्योतिर्वित्संस्थाओं और ग्रन्थकारों की सहायता के रूप में निरन्तर करते रहते हैं। उन्हीं के उदार आश्रय से आज इस ग्रन्थ के प्रकाशन का यह सुअवसर आया है; एतदर्थ मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। भगवान् श्री विश्वनाथ जी से प्रार्थना करता हूँ कि आप दीर्घायु हों और इसी प्रकार सर्वदा शास्त्र-समृद्धि में सहयोग देते हुए पुण्य एवं यश के भागी बनें।

व्याख्याकार

बनारस। पण्ड्या मोतीलाल नागर,

सर्वतोभद्रचक्र

(अर्घकाण्ड)

अथाऽर्घकाण्डं वक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मयामले।
एकाशीतिपदे चक्रे ग्रहवेधाच्छुभाशुभम् ॥

—:o:—

व्याख्याऽर्घकाण्डे नृगिरा स्वभावसरलाभिधा।
मोतीलालेन सुधिया नागरेण वितन्यते ॥

अब हम अर्घकाण्ड अर्थात् व्यापारी वस्तुओं की तेजी-मंदी जानने के प्रकार का वर्णन करेंगे, जिसे 'ब्रह्मयामल' नामक ग्रन्थ में 'इक्यासी कोष्ठकवाले (सर्वतोभद्र) चक्र में ग्रहों के वेध के द्वारा बतलाया गया है।

समीक्षा—इस प्रकरण से पहिले ग्रन्थकर्ता नरपति आचार्य ने अपने नरपतिजयचर्या ग्रन्थ के पांचवें ज्यौतिषाङ्ग में 'जलयोग' नाम का एक प्रकरण लिखा है। जिस में किस समय, किसस्थान पर कितनी वृष्टि होगी या वर्षा होगी ही नहीं? इत्यादि वर्षाज्ञान का विषय है। यह विषय भी ग्रन्थकार ने बहुत सुंदर लिखा है—देखने योग्य है। इसी से इस प्रकरण के आरंभ में ग्रन्थकार ने 'अथ' शब्द का प्रयोग किया है। और उक्त वचन में सर्वतोभद्र-

चक्र का उपयोग केवल ग्रहों के वेध के लिये ही किया गया है। अत एव सर्वतोभद्रचक्र के वेधसंबंधी नियमसूत्र ही काम में लाये जाँय। शेष विचार अर्घकाण्ड के नियमानुसार करना चाहिये।

चक्र के निर्माण का सविस्तर विधान।

ऊर्द्धगा दश विन्यस्य तिर्यग्रेखास्तथा दश।
एकाशीतिपदं चक्रं जायते नात्र संशयः॥

दस रेखा खड़ी और दस रेखा आड़ी खींचने से इक्यासी कोष्ठक का संशयरहित चक्र बन जाता है। इस प्रकार बनाये हुए इक्यासी कोष्ठक समचतुष्कोण होंगे। और वे कोष्ठक इक्यासी संख्या में इस लिये रखे गये हैं कि, उन कोष्ठकों में लिखे जानेवाले १ स्वर २ नक्षत्र ३ वर्ण ४ राशि और ५ तिथियों की संख्या भी इक्यासी ही है।

अकारादिस्वराः कोष्ठेष्वैश्यादौ विदिशि क्रमात्।
सृष्टिमार्गेण दातव्याः षोडशैवं चतुर्भ्रमम्॥

ईशान आदि चारों विदिशाओं में अकारादि-विसर्गपर्यन्त सोलह स्वरों को क्रम से चार आवृत्तियों में सृष्टिमार्ग अर्थात् प्रदक्षिणक्रम से लिखना चाहिये।

समीक्षा—उक्त वाक्य में 'अकारादि-विसर्ग-पर्यन्त सोलह स्वर' इसलिये कहे गये हैं कि, नरपतिजयचर्योक्त अन्य चक्रों में कहीं कहीं कुछ कम स्वरों का भी जो उपयोग किया गया है, वह इस चक्र में न होने पावे। विदिशाओं के सोलह कोष्ठकों की पूर्ति के लिये 'षोडश' शब्द दिया गया है। 'किन कोष्ठको में अकारादि सोलह स्वर लिखे जांय?' इस शंका की निवृत्ति और उन्हीं

सोलह कोष्ठकों के स्थानों का परिचय देने के लिये 'विदिशि' पद लिखा गया है। 'कहां से अकारादि सोलह स्वरों का लिखना आरंभ किया जाय?' इस प्रश्न के उत्तर में 'ऐश्यादौ' यह शब्द दिया गया है। ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य तथा वायव्य; इन चारों विदिशाओं में कोई गड़बड़ी न होने पावे; इस अभिप्राय से 'क्रमात्' यह पद लिखा है। और किसी भी तरह विपरीतक्रम न हो जाय; इसके लिये 'सृष्टिमार्गेण' यह शब्द व्यवहृत किया गया है। उकारादि स्वरों के कोष्ठकों का स्थान बतलाने के लिये 'चतुर्भ्रमम्' यह दानक्रियाविशेषण लिखा गया है। अर्थात् चार भ्रमण (आवृत्तियां) जिस क्रिया में जिस तरह हो सकें, उस तरह अकारादि सोलह स्वरों को चार आवृत्तियों में ईशान आदि चारों विदिशाओं में लिखा जाय। भावार्थ यह है कि, ईशानादि चारों विदिशाओं में क्रम से सृष्टिमार्ग के द्वारा अकारादि चार स्वर पहिले भ्रमण में, उकारादि चार स्वर दूसरे भ्रमण में, ऋकारादि चार स्वर तीसरे भ्रमण में और ओकारादि चार स्वर चौथे भ्रमण में लिखे जांय। दूसरे, तीसरे और चौथे भ्रमण में विदिशाओं का ज्ञान कर्णगति से होता है। जैसा कि, 'समरसार' नामक ग्रन्थ में—"अथैशात् कर्णस्तोय १६ स्वरान्" इस वचन के द्वारा कहा गया है।

कृत्तिकादीनि धिष्ण्यानि पूर्वाशादौ लिखेत्ततः।
सप्त सप्त क्रमादेतान्यष्टाविंशतिसङ्ख्यया॥

अकारादि विसर्गपर्यन्त सोलह स्वरों को ईशान आदि चारों विदिशाओं में यथास्थान लिखने के बाद, पूर्व आदि चारों दिशाओं में क्रम से कृत्तिकादि सात सात नक्षत्र अट्ठाईस २८ संख्या में लिखे।

समीक्षा—यद्यपि सत्ताईस नक्षत्र ही सर्वत्र प्रसिद्ध और परिगणित हैं, तथापि यहां पर 'अभिजित्' नक्षत्र को साथ में ले लेने से अट्ठाईस संख्या पूरी हो जाती है। उत्तराषाढा नक्षत्र का चौथा चरण और श्रवण नक्षत्र का आरंभ वाला पन्द्रहवां भाग 'अभिजित्' कहा व माना जाता है। अतएव इस चक्र में 'अभिजित्' नक्षत्र को उत्तराषाढा और श्रवण नक्षत्र के मध्य में स्थान दिया गया है। ऐसी दशा में, इस शंका को कोई स्थान ही नहीं रह जाता कि, नक्षत्र तो सत्ताईस ही होते हैं, और चारों दिशाओं में सात सात नक्षत्र किस प्रकार अट्ठाईस संख्या में लिखे जा सकते हैं ?'

हां, यहां पर एक शंका उठती है—जबकि, ज्योतिश्शास्त्र में नक्षत्रों का आरंभ अश्विनी से किया गया है, तब इस चक्र में कृत्तिका से क्यों किया गया है ? इस शंका का उचित समाधान यह है कि, स्वरोदयशास्त्र में ग्रहों के वेध के द्वारा शुभाशुभ फलकथन के उपर्युक्त 'शतपदचक्र' 'नवांश चक्र' आदि कितने ही चक्र जो पृथक् लिखे गये थे; उन सब का इस चक्र में बड़ी खूबी के साथ एक ही जगह समावेश कर दिया गया है तथा उन चक्रों का आरंभ भी कृत्तिका से ही किया गया है; इसी से इस चक्र में भी कृत्तिका से ही आरंभ किया गया है। और दूसरी बात यह भी है कि, स्वरशास्त्र में अ-इ-उ-ए-ओ; इन पाँच स्वरों की मुख्यता है। अतएव 'शतपदचक्र' में कृत्तिका के चार चरण तथा रोहिणी के प्रथम चरण में इन पांच स्वरों को स्थान मिला है। इन स्वरों के बिना किसी भी वर्ण का उच्चारण नहीं हो सकता; इसी से आरंभ में इन पाँच स्वरों की मुख्यता दिखाकर, रोहिणी के द्वितीय चरण से लेकर भरणी के चतुर्थ चरण पर्यन्त इन पाँचों स्वरों से युक्त

वर्णों का विन्यास किया है; इस कारण भी इस चक्र में कृत्तिकादि नक्षत्रों को आरंभ में स्थान दिया गया है।

अ व क ह डा दिशि प्राच्यां मटपरता दक्षिणे देयाः।
नयभजखा वारुण्यां गसदचलाश्चोत्तरे वर्णाः ॥

जिस तरह इस चक्र की प्रथम पंक्ति में सात सात नक्षत्रों को एक एक विदिशा के एक एक स्वर के मध्य में सात सात कोष्ठकों में लिखा गया है, वैसे ही दूसरे भ्रमण में प्रत्येक दिशा में पांच पांच वर्णों को लिखने के लिये, नक्षत्रों के नीचे और कोणगत दोनों स्वरों के मध्य-भाग के पांच पांच कोष्ठकों में, क्रम से पूर्वादि चारों दिशाओं में अ व क ह ड, म ट प र त, न य भ ज ख और ग स द च ल, इन पांच पांच वर्णों को लिखे।

समीक्षा—इस चक्र में अकार को दो कोष्ठकों में जो स्थान दिया गया है, उसका प्रयोजन यह है कि, प्रथम अकार स्वररूप से और द्वितीय अकार वर्ण—साहचर्य से वर्णरूप से लिखा गया है। इतना ही नहीं; किन्तु द्वितीय अकार शतपदचक्र में लिखे हुए कृत्तिका के चार चरण और रोहिणी के प्रथम चरण में स्थित अ इ उ ए ओ; इन पांचों वर्णों का प्रतिनिधि स्वरूप है। इस द्वितीय अकार को किसी ग्रह का वेध होने पर, इ उ ए ओ; इन वर्णों को भी वेध हो जायगा; यह भी एक ध्यान में रखने की बात है। और इस द्वितीय भ्रमण में वे ही वर्ण लिखे गये हैं जो प्रथम पंक्ति के नक्षत्रों में हैं।

त्रयस्त्रयो वृषाद्याश्च लेख्याः प्राच्यादितः क्रमात्।

शेषकोष्ठेषु नन्दाद्यं सवारं तिथिपञ्चकम् ॥

तीसरे भ्रमण में क्रम से पूर्वादि चारों दिशाओं में वृष आदि तीन तीन राशियां वर्णों के नीचे और कोणगत दोनों स्वरों के मध्यवर्ती कोष्ठकों में लिखे।

समीक्षा—इस चक्र में कृत्तिकादि नक्षत्रों को प्रथम पंक्ति में लिखा गया है; इस लिये पूर्व दिशा की प्रथम पंक्ति के कृत्तिकादि आश्लेषापर्यन्त सात नक्षत्रों की वृषादि तीन राशियां पूर्व दिशा में, दक्षिण दिशा की प्रथम पंक्ति में लिखे गये मघादि—विशाखान्त सात नक्षत्रों की सिंहादि तीन राशियां दक्षिण दिशा में, पश्चिम दिशावाली प्रथम पंक्ति में लिखे हुए अनुराधादि—श्रवणपर्यन्त सात नक्षत्रों की वृश्चिकादि तीन राशियां पश्चिम दिशा में और उत्तर दिशा की प्रथम पंक्ति में लिखे गये धनिष्ठादि भरणीपर्यन्त सात नक्षत्रों की कुम्भादि तीन राशियां उत्तर दिशा में लिखना उचित एवं युक्तिसङ्गत है।

चौथे भ्रमण में जो पांच कोष्ठक बचे हुए हैं, उनमें क्रम से पूर्वादि चारों दिशाओं और मध्य के कोष्ठकों में रवि आदि वारों के सहित नन्दा आदि पांचों तिथियों को लिखे। पूर्व दिशा में नन्दा १।६।११ दक्षिण दिशा में भद्रा २।७।१२ पश्चिम दिशा में जया ३।८।१३ उत्तर दिशा में रिक्ता ४।९।१४ और मध्यकोष्ठक में पूर्णा ५।१०।१५।३० इन तिथियों को लिखना चाहिये।

यहां पर यह शंका स्वयमेव उत्पन्न हो जाती है कि नन्दा आदि तिथियां भी पांच हैं और चक्र में शेष कोष्ठक भी पांच ही हैं, फिर सात वार इन पांच कोष्ठकों में कहां कहां लिखे जांय? इस शंका का समाधान ग्रन्थकार ने स्वयं आगे की कारिका में इस प्रकार किया है कि:—

भौमादित्यौ च नन्दायां भद्रायां बुधशीतगू।
जयायाश्च गुरुः प्रोक्तो रिक्तायां भार्गवस्तथा॥
पूर्णायां शनिवारश्च लेख्यश्चक्रेऽत्र निश्चितम्।
इत्येष सर्वतोभद्रविस्तारः कीर्तितो मया॥

चक्र में नन्दा के साथ सूर्य और मंगल, भद्रा के साथ चन्द्र और बुध, जया के साथ गुरु; रिक्ता के साथ शुक्र और पूर्णा तिथि के साथ शनिवार को लिखना चाहिये। क्यों कि, वारों के लिये इस चक्र में कोई पृथक् कोष्ठक नहीं रक्खे गये हैं। इस प्रकार मैंने (ग्रन्थकर्त्ता नरपति आचार्य ने) सर्वतोभद्रचक्र के निर्माण का सविस्तर विधान बतलाया है।

समीक्षा—एकाशीतिपदचक्र को ही सर्वतोभद्रचक्र समझना चाहिये। क्यों कि, ग्रन्थकारने दोनों ही नामों से इस चक्र का उल्लेख किया है।

इस के आगे नरपतिजयचर्या की कितनी ही मुद्रित तथा हस्तलिखित पुस्तकों में नीचे लिखे हुए दो बचन अधिक पाये जाते हैं:—

"ऊर्ध्वदृष्टी च भौमार्कौ केकरौ बुधभार्गवौ।
समदृष्टी च जीवेन्दू शनिराहू त्वधोमुखौ॥
नीचस्थ ऊर्ध्वदृष्टिःस्यादुच्चैरधो निरीक्षयेत्।
समश्च पार्श्वतोदृष्टिस्त्रिधा दृष्टिः प्रकथ्यते॥

सूर्य और मंगल ऊर्ध्वदृष्टि हैं, बुध और शुक्र केकरदृष्टि हैं। चन्द्र और गुरु समदृष्टि हैं एवं शनि और राहु अधोदृष्टि हैं। नीचराशिस्थित ग्रह ऊर्ध्वदृष्टि, उच्चराशिस्थित ग्रह अधोदृष्टि और समस्थान (उच्च-नीच के मध्य का स्थान) में स्थित ग्रह पार्श्वदृष्टि कहा जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त पहिले वचन में सूर्यादि ग्रहों की उर्ध्वदृष्टि आदि चार प्रकार की दृष्टियाँ और दूसरे वचन में सभी ग्रहों की तीन प्रकार की दृष्टियां भी बतलाई गई हैं। परन्तु ग्रहों का

यह ऊर्ध्वदृष्टि आदि स्वभाव इस सर्वतोभद्रचक्र में काम नहीं आ सकता। क्यों कि, चक्र के निर्माण की परिभाषा और वेध के विधान में विरोध होता है, जैसा कि निम्नलिखित विचार से प्रकट होता है। इस सर्वतोभद्रचक्र में नक्षत्रों के स्थान परिधिभूत हैं और वे ही अबतक वेधारंभ के प्रधान स्थान माने जाते हैं। अर्थात् इन नक्षत्रों पर स्थित ग्रहों की गति के आधार पर वाम, सम्मुख और दक्षिण की ओर वेध लेकर ही शुभाशुभ फल का विचार किया जाता है। ऐसी स्थिति में मान लीजिये कि, यदि कोई ग्रह चक्र की ऊर्ध्वपंक्ति में नीचराशिगत किसी नक्षत्र के किसी चरण में स्थित हो, तो वह ऊर्ध्वदृष्टि होने के कारण नीचे की तरफ वेध नहीं कर सकता। और इसी तरह यदि कोई ग्रह नीचे की पंक्ति में उच्चराशिगत किसी नक्षत्र के किसी चरण में स्थित हो, तो वह ऊपर की तरफ वेध नहीं कर सकता। कारण कि, इस चक्र में पूर्व पंक्ति के परिधिभूत नक्षत्रस्थान से ऊपर की ओर तथा पश्चिम पंक्ति में नीचे की ओर कोई भी वेध्य नहीं हैं। इस लिये इस सर्वतोभद्रचक्र में तो इन वचनों का किसी प्रकार भी उपयोग होना सर्वथा असंभव है। वास्तव में ग्रहों का यह ऊर्ध्व-दृष्टि आदि स्वभाव दृष्टितुम्बुर चक्र में काम आता है। क्यों कि, ग्रन्थकर्त्ता ने उसी चक्रमें इन वचनों को लिखा है। और जय-लक्ष्मी टीकाकार ने भी उसी प्रकरण में उक्त वचनों की व्याख्या की है। यही नहीं; नरपति ने 'कोटचक्र' में ग्रहोंका शुभाशुभत्व, तीन प्रकार का ग्रहचार, ऊर्ध्वादि दृष्टियों के भेद, उदयास्तसहित-वक्रशीघ्रसमत्व का ज्ञान, ग्रहों की गतियों के भेद, मित्रामित्र-विचार भी प्रदर्शित किये हैं। अर्धचन्द्राकृति कोटचक्र में भी ग्रहों के उर्ध्वदृष्टि आदि स्वभाव को ग्रहण किया है। इस प्रकार नरपतिजयचर्याग्रन्थ के पूर्वापरपर्यालोचन से, सर्वतोभद्रचक्र से

भिन्न अन्य चक्रों में ही ग्रहों का ऊर्ध्वदृष्टि आदि स्वभाव मानना चाहिये; यह निर्विवाद सिद्ध है। सखेद आश्चर्य होता है कि, नरपतिजयचर्या की 'जयलक्ष्मी' 'नारहरी' आदि टीकाओं के प्रणेताओं ने भी उक्त दोनों वचनों की इस स्थल पर न तो व्याख्या ही की और न कोई इन वचनों के प्रसंग का कोई संकेत ही किया है, फिर भी उच्चकोटि में गिनेजानेवाले महान् विद्वानों ने नहीं मालूम कैसा संशोधन किया है कि, ऐसे प्रामादिक पाठ को समूल एवं प्रकृतोपयोगी मान कर, जैसा पाठ मिला, वैसाही ज्यों का त्यों प्रकाशित करने की अनुमति दे दी ?

चक्र में ग्रहों की दृष्टियों के द्वारा वेध का विधान।

यस्मिन् ऋक्षे स्थितः खेटस्ततो वेधत्रयं भवेत्।
ग्रहदृष्टिवशेनाऽत्र वाम-सम्मुख-दक्षिणम् ॥

ग्रह जिस नक्षत्र पर स्थित होता है, उस अवधिभूत नक्षत्र-स्थान से आगे की कारिका में कही जानेवाली ग्रहों की तीन प्रकार की दृष्टियों के आधार पर इस चक्रमें वाम, सम्मुख और दक्षिणको ओर वेध करता है।

भौमादि पांच तारा-ग्रहों की-व्यवस्था।

वक्रगे दक्षिणा दृष्टिर्वामा दृष्टिश्च शीघ्रगे।
मध्यचारे तथा मध्या ज्ञेया भौमादिपञ्चके ॥

भौमादि पांच (मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि) ग्रहों की वक्री होने पर निजस्थान से दाहिनी ओर, शीघ्री होने पर बाँई तरफ और मध्यचारी होने पर सामने की ओर, दृष्टि होती है। क्यों कि, ये भौमादि पांच ग्रह कभी वक्री कभी शीघ्री और कभी मध्यचारी हुआ करते हैं।

शेष चार ग्रहों की दृष्टि-व्यवस्था।

राहुकेतू सदा वक्रौ शीघ्रगौ चन्द्रभास्करौ ।
गतेरेकस्वभावत्वादेषां दृष्टित्रयं सदा ॥

राहु केतु (दोनों) सदा वक्री रहते हैं और चन्द्र-सूर्य (दोनों) सर्वदा शीघ्रगामी। इसलिये इन चारों ग्रहों की सर्वदा एक स्वभाव की ही गति होने के कारण, सदैव तीनों ही (वाम, सम्मुख और दक्षिण की) ओर दृष्टियां होती हैं।

समीक्षा—उपर्युक्त दोनों वचनों में दृष्टिशब्द का प्रयोग वेधाभिप्राय से किया गया है। क्यों कि, राशिचक्र में जिस तरह दाहिनी ओर की, सामने की और बांई तरफ की राशियों पर दृष्टि होती है, उसी तरह इस सर्वतोभद्रचक्र में भी तीनों तरफ वेध हुआ करता है। इसलिये, यहां पर यह समझ लेना अत्यावश्यक है कि, 'दृष्टि और वेध में क्या अन्तर है ?'

स्वरशास्त्रज्ञ पूर्वाचार्यों ने कहीं कहीं पर 'दृष्टि' और 'वेध' को तुल्यार्थक मान कर वेधाभिप्राय से दृष्टिशब्द का जो प्रयोग किया है, उसका तात्पर्य यह है कि, उनके मत में दृष्टि दो प्रकार की है। एक स्थूल वा साधारण और दूसरी सूक्ष्म वा गहरी। अथवा यों कहिये कि, एक बाह्य और दूसरी आन्तरिक। स्थूल अथवा बाह्यदृष्टि उसे कहते हैं, जो मेषादि राशिमण्डल को किसी राशि में स्थित ग्रह की किसी राशि वा ग्रह पर जितनी दृष्टि जातकशास्त्र तथा स्वरशास्त्र में बतलाई गई है। और सूक्ष्म अथवा आन्तरिक (गहरी) दृष्टि वह है, जिसे स्वरशास्त्र में वेधशब्द से व्यवहृत किया गया है और जो सर्वतोभद्र आदि चक्रों में किसी नक्षत्र पर स्थित ग्रह की वाम, संमुख और दक्षिण की ओर वेध मार्ग में आनेवाले वर्णादिकों

पर हुआ करती है। इसी बात को और भी स्पष्ट रीति से इस तरह समझा जा सकता है कि, मानों आप एक आम्रवृक्ष के पास खड़े हैं और वह समस्त वृक्ष आप के दृष्टिगोचर हो रहा है, तो यह साधारण वा बाह्यदृष्टि हुई। और यदि उसी वृक्ष के किसी एक ही फल, फूल या डाली पर आप की दृष्टि रुकी हुई है, तो वह सूक्ष्म वा गहरी दृष्टि होगी। जितनी सुन्दर और सूक्ष्म विवेचना गहरी दृष्टि से की जा सकती है, उतनी साधारण दृष्टि से नहीं की जा सकती। फिर भी उस साधारण दृष्टि का होना अत्यन्त आवश्यक है। क्यों कि, जबतक समस्त वृक्ष आप के दृष्टिगोचर न होगा, तबतक उसके किसी फल-पुष्पादि अङ्ग का विशेष विवेचन हो सकना अति-कठिन और असंभव होगा। ठीक यही अवस्था ग्रहों की भी समझना चाहिये। उनकी चराचर जगत् के सभी पदार्थों का जिन जिन राशियों में समावेश—आश्रयस्थान है, उन उन राशियों पर शास्त्र-कथित साधारण दृष्टि तो होना ही चाहिये। पीछे से स्वरोदयशास्त्रोक्त देश, काल एवं वस्तुमात्र के वर्णादिपञ्चक पर वेधस्वरूप गहरी दृष्टि को लेकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन किया जा सकता है। यद्यपि साधारण दृष्टि से सूक्ष्म विवेचन तो न हो सकेगा, फिर भी कुछ सामान्य निर्णय तो हो ही जायगा। परन्तु यदि वेध तो होगा और साधारण दृष्टि न होगी, तब तो कुछ भी विवेचन—फलनिरूपण—न हो सकेगा। इस तरह यह सिद्ध हो जाता है कि, दृष्टि और वेध का संबंध शरीर और प्राण जैसा है। दृष्टि शरीर है तो वेध प्राण है। जिस तरह प्राण सूक्ष्म और अत्यावश्यक होते हुए भी शरीर के सापेक्ष है, उसी तरह वेध भी दृष्टि के सापेक्ष है। और जिस तरह शरीर के न रहने पर प्राण की कोई भी क्रिया पूरी नहीं हो सकती, ठीक उसी तरह साधारण दृष्टि के बिना वेध भी क्रियारहित हो जाता है—कुछ भी शुभा-

शुभ फल नहीं कर सकता। यही बात ग्रन्थकार नरपति आचार्य ने भी आगे इस अर्घकाण्ड में कही है।

ग्रहों के उदय और वक्रशीघ्रसमत्व का ज्ञान।

सूर्यमुक्ता उदीयन्ते शीघ्राश्चार्के द्वितीयगे।
समास्तृतीयगे ज्ञेया मन्दा भानौ चतुर्थगे॥
वक्राः स्युः पञ्चमे षष्ठे त्वतिवक्रा नगाष्टगे।
नवमे दशमे भानौ जायते कुटिला गतिः॥
द्वादशैकादशे सूर्ये भजन्ते शीघ्रतां पुनः।
ग्रहगत्या क्रमेणैवं वेधदृष्टिं वदेत् सुधीः॥

ग्रह जब सूर्यमण्डल से निकल जाते हैं, तब वे उदित समझे जाते हैं। और जब किसी ग्रह से दूसरे स्थान में सूर्य हो, तब वह ग्रह शीघ्री कहा जाता है। ग्रह से तीसरे स्थान में सूर्य हो, तो वह ग्रह समगति होता है। ग्रह से चतुर्थ स्थान में सूर्य हो, तब वह ग्रह मन्दगति कहा जाता है। ग्रह से पांचवें और छठे स्थान में सूर्य हो तो वह ग्रह वक्री, और सातवें तथा आठवें स्थान में सूर्य हो, तो अतिवक्री माना जाता है। ग्रह से नवम और दशम स्थान में सूर्य हो, तब वह ग्रह कुटिलगति होता है। ग्रह से ग्यारहवें और बारहवें स्थान में सूर्य हो, तो वह ग्रह फिर शीघ्री होता है। इस प्रकार की ग्रहगति के द्वारा विद्वानों को चाहिये कि, वे वेधोपयुक्त दृष्टि को समझें।

समीक्षा—यद्यपि उक्त वचनों में सूर्य के साथ एक ही राशि में रहनेवाले ग्रह की गति का कोई संकेत नहीं है, तथापि ग्रह से बारहवें और दूसरे स्थान में सूर्य के स्थित होनेपर जब कि उस ग्रह को शीघ्री बतलाया है; तब बारहवें और दूसरे स्थान के

मध्य में सूर्य के साथ एक ही राशि में रहनेवाले ग्रह को भी शीघ्री ही समझना चाहिये। किन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि, उक्त वचनों में सूर्य के साथ एक ही राशि में रहनेवाले ग्रह की गति का कोई भी उल्लेख न होने के कारण उस ग्रह को मध्यगति ही समझा जाय। परन्तु ऊपर कहा हुआ यह वक्रादिलक्षण मङ्गल, गुरु और शनि के लिये ही समझना चाहिये। क्यों कि, सर्वतोभद्रचक्रविषयक संग्रहग्रन्थों में इसी स्थल पर बुध-शुक्र के विषय में यह विशेष नियम लिखा मिलता है कि:—

"सूर्याद्धने द्वादशे च ज्ञसितौ वक्रशीघ्रगौ।
तृतीयैकादशे चैव शुक्रसौम्यौ समौ स्मृतौ॥"

सूर्य से दूसरे और बारहवें स्थान में स्थित बुध और शुक्र (क्रम से) वक्री और शीघ्री होते हैं। और सूर्य से तीसरे तथा ग्यारहवें स्थान में वे बुध-शुक्र समगति माने जाते हैं। सिद्धान्तवेत्ता विद्वानों से छिपा नहीं है कि, सिद्धान्तकथित ग्रहगणित की रीति से किसी तरह भी सूर्य से तीसरे या ग्यारहवें स्थान में बुध-शुक्र की स्थिति नहीं होती। अतएव ऊपर कहा गया यह वक्रादिलक्षण प्रायोवादसिद्ध (स्थूल) है। वास्तव में भौमादि पांच ग्रहों की मध्यमगति से स्फुटगति जब अधिक हो, तब वे शीघ्री हुआ करते हैं। और जब उनकी मध्यमगति के समान स्फुटगति भी हो, तब वे समगति होते हैं। इन ग्रहों की जब मध्यमगति से भी स्फुटगति न्यून हो जाती है, तब ये भौमादि पांच ग्रह मन्दगति कहे जाते हैं। और जब भौमादि पांच ग्रहों की गति पीछे की तरफ उलटती है, तब ये ग्रह वक्री होते हैं। बस, यही निर्दोष लक्षण है।

ग्रहों की गतियों के भेद ।

सिद्धान्तग्रन्थों में ग्रहों की आठ प्रकार की गतियां बतलाई हैं। उनमें से वक्री, अतिवक्री और कुटिलगति वाले ग्रह को वक्री, तथा शीघ्री और अतिशीघ्री ग्रह को शीघ्री, एवं सम, मध्य तथा मन्दगति वाले ग्रह को मध्यचारी मान कर, ग्रन्थकर्ता नरपति ने इस सर्वतोभद्र चक्र में वाम, संमुख और दक्षिण की ओर वेध लेने के योग्य बताया हैं।

भौमादि पांच ग्रहों की मध्यमगति का कलादि मान।

ग्रह—	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
कला—	३१	५९	५	५९	२
विकला-	२६	८	०	८	०

भौमादि पांच ग्रहों की परम शीघ्र गति का कलादि मान।

ग्रह—	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
कला—	४६	११३	१४	७५	७
विकला—	११	३२	४	४२	४५

कभी कभी इन ग्रहों की परम शीघ्रगति का मान न्यूनाधिक भी हुआ करता है। वह पञ्चाङ्ग में दी हुई ग्रहगति से जाना जा सकता है।

समीक्षा—मध्यवेध के संबंध में, मूल ग्रन्थकार ने कोई विशेष उल्लेख नहीं किया है। किन्तु जयलक्ष्मी टीकाकार ने 'स्वरादेश' नामक ग्रन्थ के—"ग्रहः सव्यापसव्येन चक्षुषा वेधयेत्पुनः। ऋक्षाक्षरस्वरादींस्तु सम्मुखेनान्त्यभं तथा ॥" इस वचन को उद्धृत कर, यह बतलाया है कि, ग्रह का जब संमुख वेध होगा, तब केवल सामने के नक्षत्र को ही होगा, बीच में आनेवाले वर्णस्वरादि को न होगा। किन्तु नरहरि टीकाकार ने संमुखवेध का स्वीकार किया है। ग्रन्थान्तरों के देखने से दोनों ही मत पाये जाते हैं। पं० मीठालालजी के सम्पादित सर्वतोभद्रचक्र में भी यह वचन है। लगभग आधी शताब्दि से इस मुद्रित ग्रंथ के आधार पर भारतीय विद्वान् तेजी-मंदी का निर्णय करते आये हैं। तदनुसार फल कैसा और कितना घटित होता है, यह तो विद्वान् लोग ही जानें। हमें तो नरपति का इस विषय में क्या मन्तव्य है; यही देखना है। मूलवचन से तो यही स्पष्ट होता है कि—'मध्यचारे तथा मध्या' मध्य में आने वाले वर्णादि पर वाम-दक्षिण वेध की तरह यह संमुख वेध भी होता है। क्योंकि, नरपति ने इस संबंध में अपने ग्रन्थ में कहीं भी इसके विरुद्ध कुछ भी नहीं लिखा है।

मध्यवेध को गर्ग, लल्ल, वराह आदि आचार्यों ने भी माना है। किन्तु वाम-दक्षिण वेध की अपेक्षा संमुखवेध को दुर्बल माना है। उन्हों ने मध्यवेध में, वेध की न्यूनाधिकता को बतलाते हुए फल में भी न्यूनाधिकता सूचित की है। यह विषय हमारे सम्पादित 'सर्वतोभद्रदर्पण' में विस्तार से आपको देखने के लिये मिलेगा। सचमुच 'सर्वतोभद्रदर्पण' में वे ही अत्यावश्यक रहस्य-सूचक विषय लिखे गये हैं, जिनकी चर्चा प्रचलित नरपतिजयचर्या, विजयस्तम्भ, समरसार आदि ग्रन्थों में नहीं है। लेख बढ़ जाने के भय से हम यहाँ नहीं लिख रहे हैं।

चक्रस्थित कोणगत स्वरों के वेध का विशेष नियम।

अन्त्याद्यपादयोः खेटे गते कोणगधिष्ण्ययोः।
अकारादिचतुष्कस्य वेधः पूर्णातिथेस्तथा ॥

चक्र में कोणगत दो दो नक्षत्रों के अन्त्य और आदि के चरणों पर जब कोई ग्रह स्थित होता है, तब वह (कोणगत) अकार आदि चार स्वरों और पूर्णातिथि को वेध करता है।

समीक्षा—कोणगत स्वरों तथा पूर्णा तिथि के वेधसंबंध में कुछ

विद्वानों ने यह व्याख्या की है कि, कोण से आगे का कृत्तिका नक्षत्र है उसका पहिला चरण और कोण से पीछे की ओर भरणी नक्षत्र है, उसका चौथा चरण; इस प्रकार इन दोनों चरणों पर जब कोई ग्रह स्थित होता है, तब वह अकारादि चार स्वरों और पूर्णातिथि को वेध करता है। उनका कहना है कि, कोणगत अकारादि चार स्वर वेही लिये जांय, जो चक्र के प्रत्येक भ्रमण में ईशान आदि चारों कोणों में 'अ उ लृ ओ' इत्यादि चार चार स्वर लिखे गये हैं। किन्तु कुछ अन्य विद्वान् कहते हैं कि, यह व्याख्या उचित नहीं है। क्यों कि, उकारादि स्वरों का वेध तो पूर्वोक्तरीति से वेधमार्गप्राप्त ही है; किन्तु कोणगत अकारादि (अ आ इ ई) इन चार स्वरों को पूर्वोक्त वेधपद्धति से वेध नहीं प्राप्त होता; इसलिये कोणगत अ आ इ ई, इन चार स्वरों के वेध की प्राप्ति के लिये ही यह वचन लिखा गया है। परन्तु वास्तव में यह कथन भी असंगत है। कारण कि, किसी एक कोण के नक्षत्र-चरण पर स्थित ग्रहका अन्य सभी कोणगत स्वरों से संबंध नहीं हो सकता। अतएव भरणी के चतुर्थ पाद और कृत्तिका के प्रथम पाद पर स्थित ग्रह का कोणगत केवल अकारस्वर को ही वेध होगा। आश्लेषा के चौथे और मघा के पहिले चरण पर स्थित ग्रह का कोणगत केवल आकार स्वर को ही वेध होगा। विशाखा के अन्तिमपाद और अनुराधा के आद्यपाद पर स्थित ग्रह का इकार स्वर को ही वेध होगा। और श्रवणनक्षत्र के चतुर्थचरण तथा घनिष्ठा के प्रथमचरण पर स्थित ग्रह का ईकार स्वर को ही वेध होगा। साथ ही प्रत्येक कोणगत नक्षत्रों के अन्त्य तथा प्रथम पाद पर स्थित ग्रह का पूर्णातिथि को भी वेध होगा। यही बात स्पष्ट शब्दों में 'स्वरादेश' नामक ग्रन्थ में कही गई है कि:—

"भरण्यन्त्ये कृत्तिकाद्ये पादे वेधोऽस्वरे ग्रहे।
तथा पूर्णातिथेर्वेधं चिन्तयेत् सुविचक्षणः॥"

दामोदरी-पद्धति में, दामोदर दैवज्ञ का मत तो कुछ और ही है। वे कहते हैं कि, भरणी के चतुर्थ पाद पर स्थित ग्रह मार्गी होने पर ही कोणगत अकार स्वर को वेध कर सकेगा, वक्री होने पर नहीं। क्यों कि, वक्री ग्रह पराङ्मुख होता है। इसी प्रकार कृत्तिका नक्षत्र के प्रथम पाद पर स्थित ग्रह वक्री होने पर ही कोणगत अकार स्वर को वेध कर सकेगा, मार्गी होगा तो नहीं। क्यों कि, वह भी विमुख होता है। पूर्णातिथि को तो वक्री और मार्गी दोनों ही ग्रहों का वेध होगा। कारण कि, उपपत्ति को सभी ने प्रबल माना है।

उपर्युक्त विवेचन से यही सिद्ध होता है कि, चक्र में आरंभ के चार कोणों में पहिले भ्रमण में जो अ आ इ ई; यह चार स्वर लिखे गये हैं; वे वेधमार्ग में नहीं आते। इन पर कोणगत नक्षत्र के अन्तिम चरण पर स्थित मार्गी ग्रह का वेध और प्रथम पाद पर स्थित वक्री ग्रह का वेध होता है। साथ ही पूर्णातिथि को भी कोणगत नक्षत्रों के अन्त्य और आद्य चरण पर स्थित मार्गी तथा वक्री ग्रहों का वेध होगा। और मध्यचारी ग्रह का कोणगत नक्षत्र के अन्त्य पाद पर स्थित हो कर कोणगत स्वर तथा पूर्णा को तभी वेध हो सकेगा, जब कि, वह मार्गी होने के बाद धीमी चाल से आगे की ओर बढ़ता रहता है। इसी प्रकार कोणगत नक्षत्र के प्रथम पाद पर स्थित मध्यचारी ग्रह का वेध तभी हो सकेगा, जब कि, वह वक्री होने के लिये पीछे की ओर मन्दगति से चलता है।

चक्र में अनुक्त घ ङ छ आदि वर्णों के वेध का ज्ञान।

घङछाः षणठाश्चैव धफढास्थझञास्तथा।
एतत् त्रिकं त्रिकं विद्धं विद्धैः क प भ दैः क्रमात् ॥

जिन वर्णों का सर्वतोभद्रचक्र में विन्यास नहीं किया गया है, उनके वेधज्ञान का उपाय बतलाते हैं कि, चक्र में लिखे हुए क–प–भ–द; इन वर्णों को वेध होने पर, क्रम से घ ङ छ, ष ण ठ, ध फ ढ और थ झ ञ; इन तीन तीन वर्णों को भी वेध हो जाता है। क्यों कि, चक्र में उक्त वर्णों का विन्यास नहीं किया है। अतएव क–प–भ–द वर्णों के साथ साथ घ ङ छ आदि प्रत्येक त्रिक का भी वेध माना जाता है।

घङछा रौद्रगे विद्धाः षणठा हस्तगे ग्रहे।
धफढाः प्रागषाढायां थझञा भाद्र उत्तरे ॥

प्रकारान्तर से भी घ ङ छ आदि प्रत्येक त्रिक का वेध-विधान बतलाते हैं कि, कोई भी सौम्य वा क्रूर ग्रह जब आर्द्रा नक्षत्र पर पहुँचता है, तब घ ङ छ; इन वर्णों को वेध होता है। हस्त नक्षत्र पर जब कोई ग्रह स्थित होता है, तब ष ण ठ; इन वर्णों को वेध होता है। पूर्वाषाढा नक्षत्र पर जब कोई ग्रह हो, तब ध फ ढ; इन वर्णों को और जब कोई ग्रह उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र पर स्थित होता है, तब थ झ ञ; इन वर्णों को वेध होता है।

समीक्षा—वास्तव में तत्व यह है कि, घ ङ छ आदि प्रत्येक वर्ण उन उन नक्षत्रों का नवांश—स्वरूप है। अतएव आर्द्रादि पूर्वोक्त चार नक्षत्रों के घ ङ छ आदि जिस जिस नवांश पर ग्रह स्थित होगा, चाहे वह ग्रह वक्री वा शीघ्री अथवा मध्यचारी क्यों न हो, उसका उस उस नवांशगत

स्थित
वाभ,
ग्रह
ा ही
था
धान
लित
वा
ाते
कसी
नुष्य
को
को
वर्ण-
वेध
कार
जैसे

सर्वतोभद्रचक्र

पूर्व दिशा

राशि मण्डल	मे	वृष												मिथुन									कर्क					
नवांश राशि संख्या	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
नवांश पति	गु	शा	शा	गु	म	शु	बु	चं	सू	बु	शु	मं	गु	शा	शा	गु	मं	शु	बु	च	सू	बु	शु	म	गु	शा	शा	गु
स्पष्ट राशि	१	१	१	१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२	२	२	२	३	३	३	३	३	३	३	३	३	४
अंश	०	३	६	१०	१३	१६	२०	२३	२६	०	३	६	१०	१३	१६	२०	२३	२६	०	३	६	१०	१३	१६	२०	२३	२६	०
कला	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०
वर्ण	अ	इ	उ	ए	ओ	व	वि	वु	वे	वो	क	कि	कु	घ	ङ	छ	के	को	ह	हि	हु	हे	हो	ड	डि	डु	डे	डो
चरण संख्या	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४

अ	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	आश्लेषा	आ
भरणी	उ	अ	व	क	ह	ड	ऊ	मघा
अश्विनी	ल	ऋ	वृष	मिथुन	कर्क	ॠ	म	पूर्वाफाल्गुनी
रेवती	च	मेष	ओ	सू मं नन्दा १।६।११	औ	सिंह	ट	उत्तराफाल्गुनी
उत्तराभाद्रपदा	द	मीन	शुक्र रिक्ता ४।९।१४	शनि पूर्णा ५।१०।१५।३०	गुरु जया ३।८।१३	कन्या	प	हस्त
पूर्वाभाद्रपदा	स	कुम्भ	अः	बुध भद्रा २।७।१२	अं	तुला	र	चित्रा
शतभिषक	ग	ॡ	मकर	धनु	वृश्चिक	लृ	त	स्वाति
धनिष्ठा	ऐ	ख	ज	भ	य	न	ए	विशाखा
ई	श्रवण	अभिजित	उत्तराषाढा	पूर्वाषाढा	मूल	ज्येष्ठा	अनुराधा	इ

राशि मण्डल	सिंह									कन्या									तुला									
नवांश संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४
नवांश पति	मं	शु	बु	च	सू	बु	शु	मं	गु	श	श	गु	मं	शु	बु	च	सू	बु	शु	मं	गु	श	श	गु	मं	शु	बु	च
राशि	४	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	५	५	६	६	६	६	६	६	६	६	६	७	७
अंश	३	६	१०	१३	१६	२०	२३	२६	०	३	६	१०	१३	१६	२०	२३	२६	०	३	६	१०	१३	१६	२०	२३	२६	०	३
कला	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०
वर्ण	म	मि	मु	मे	मो	ट	टि	टु	टे	टो	प	पि	पु	ष	ण	ठ	पे	पो	र	रि	रु	रे	रो	त	ति	तु	ते	तो
चरण संख्या	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४

राशि मण्डल	वृश्चिक								धनु									मकर										
नवांश संख्या	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	९/१०	१०/११	११	१२	१२	१२	१२/१	१/२	२/३	३/४	४
नवांश पति	सू	बु	शु	मं	गु	श	श	गु	मं	शु	बु	च	सू	बु	शु	मं	गु	गु/श	श	श	गु	गु	गु	गु/मं	मं/शु	शु/बु	बु/च	च
राशि	७	७	७	७	७	७	७	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
अंश	६	१०	१३	१६	२०	२३	२६	०	३	६	१०	१३	१६	२०	२३	२६	२९	१	४	६	७	८	९	१०	१४	१७	२०	२३
कला	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	१०	४०	१०	४०	४३/२०	४६/४०	५०/०	५३/२०	०/०	६/४०	१३/२०	२०
वर्ण	न	नि	नु	ने	नो	य	यि	यु	ये	यो	भ	भि	भु	ध	फ	ढ	भे	भो	ज	जि	जु	जे	जो	ख	खि	खु	खे	खो
चरण संख्या	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४

राशि मण्डल													मीन									मेष							
नवांश संख्या	५	[illegible]	[illegible]	[illegible]	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८
नवांश पति	सू	बु	शु	म	गु	श	श	गु	मं	शु	बु	चं	सू	बु	शु	म	गु	श	श	गु	म	शु	बु	च	सू	बु	शु	म
राशि	९	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	११	११	११	११	११	१२	०	०	०	०	०	०	०	०
अंश	२६	०	३	६	१०	१३	१६	२०	२३	२६	०	३	६	१०	१३	१६	२०	२३	२६	०	३	६	१०	१३	१६	२०	२३	२६
कला	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०
वर्ण	ग	गि	गु	गे	गो	स	सि	सु	से	सो	द	दि	दु	थ	झ	ञ	दे	दो	च	चि	चु	चे	चो	ल	लि	लु	ले	लो
चरण संख्या	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४	१	२	३	४

है, उ
क—प—
ण ठ,
हो जा
किया
आदि

बतल
पर प
नक्षत्र
को वे
ध फ
पर स्थि

प्रत्येक
आर्द्रा
नवांश
अथवा ... उस नवांशगत

घ ङ छ आदि वर्णों को ही वेध होगा। उसी नक्षत्र पर स्थित होकर अन्य नवांशगत वर्णों को नहीं। यह वेध पूर्वोक्त वाम, संमुख और दक्षिण वेध से भिन्न 'स्थितिज' वेध है।

'समरसार' के प्रणेता ने तोः—

"रौद्रादिमध्यस्थभचतुष्कवेधतो वेधमादिशेत् क्रमशः।
घङछां षणठां धफढां थभञामिति सर्वतोभद्रम् ॥"

इस वचन के द्वारा आर्द्रादि चार नक्षत्रों को किसी ग्रह का वेध होने से घ ङ छ आदि वर्णों के वेध का एक तीसरा ही प्रकार बतलाया है। किन्तु वह बहुसम्मत नहीं है।

सर्वतोभद्रचक्र में जिन वर्णों का विन्यास किया गया था और जिन वर्णों का नहीं किया गया था, उन के वेध-विधान का तो वर्णन किया जा चुका है। अब जिन वर्णों का प्रचलित प्रान्तीय भाषाओं में भिन्न भिन्न उच्चारण वा उल्लेख सुनने वा देखने में आता है; उन वर्णों के वेधज्ञान का प्रचार बतलाते हैं कि: —

वबौ सशौ खषौ चैव जयाविति परस्परम्।
ज्ञेयौ तुल्यफलौ भिन्नस्वरस्याधः स्थितावपि ॥

चक्र में यवर्गीय वकार है, पवर्गीय बकार नहीं। यदि किसी के नाम का अद्यवर्ण पवर्गीय बकार हो, अथवा कोई मनुष्य 'व' के स्थान में 'ब' का उच्चारण करे या लिखे—जैसे 'वेद' को 'बेद' और 'विद्या' को 'बिद्या' तो वहां पर दोनों वर्णों को समान मान कर दोनों वर्णों का (आगे लिखे जाने वाले वर्ण-स्वरचक्र में) भिन्न भिन्न स्वर होते हुए भी दोनों वर्णों के वेध का तुल्य ही फल समझना चाहिये। इसी प्रकार दन्त्य सकार और तालव्य शकार को भी समान मानना चाहिये। जैसे

कोई 'शङ्कर' को 'संकर' और 'शालिग्राम' को 'सालिग्राम' कहे या लिखे तो ऐसी स्थिति में चक्र में लिखे हुए सकार को वेध होने पर शकार को भी वेध हो जायगा; भले ही सकार और शकार के स्वर भिन्न भिन्न ही क्यों न हों? और वेधफल तो दोनों का बराबर ही होगा। इसी तरह कण्ठस्थानीय खकार और मूर्धन्य षकार भिन्न भिन्न स्वरवाले होते हुए भी परस्पर समान हैं। एक को वेध होने से दूसरे को भी वेध हो जायगा और फल भी तुल्य ही माना जायगा। जैसे—'षण्मुख' को 'खण्मुख' अथवा 'षडानन' को 'खडानन' कोई कहे तो वहाँ 'ष' और 'ख' को समान मान कर एक को वेध होने पर दूसरे को भी वेध होगा और फल भी तुल्य ही होगा। इसी तरह 'य' और 'ज' दोनों वर्ण समान हैं। यदि कोई मनुष्य 'यजमान' को जजमान' 'योगेश्वर' को 'जोगेश्वर' और 'यज्ञ' को 'जज्ञ' कहे, तो वहां पर यद्यपि दोनों वर्णों के स्वर भिन्न भिन्न हैं, तथापि वे तुल्यफल ही समझे जांयगे और एक को वेध होने पर दूसरे को भी वेध हो जायगा।

अब वेधविचारार्थ कौन कौन वेध्य लिये जाँय? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि:—

देशःकालस्तथा पण्यमिति त्रीण्यर्घनिर्णये।
चिन्तनीयानि वेध्यानि सर्वकालं विचक्षणैः॥

वस्तुमात्र के मूल्य का निर्णय करने के लिये, विद्वानों को चाहिये कि, देश, काल और पण्य (क्रय-विक्रय के पदार्थ); इन तीनों को सर्वदा वेध्य समझें।

समीक्षा—भावार्थ यह है कि, व्यापारीवर्ग को यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि, किस देश में, किस समय, किस वस्तु का क्या मूल्य अथवा भाव होगा? क्यों कि, जहां पर जो वस्तु जिस समय सस्ती हो, वहां से खरीद कर, तेजी का समय आने पर बेच देने से वास्तविक लाभ हो सकता है। इसी बात को पहिले से जान लेने के लिये, स्वरशास्त्र के अनुसार देश, काल और पण्य के वर्णादिपञ्चक पर इक्यासी कोष्ठक वाले 'सर्वतोभद्रचक्र' के द्वारा नक्षत्रों पर स्थित ग्रहों का वेध देखना चाहिये कि, देशादि के किन किन वर्णादिकों पर किन किन ग्रहों का वेध हो रहा है।

देश के भेद।

देशोऽथ मण्डलं स्थानमिति देशस्त्रिधोच्यते।

१ देश २ मण्डल और ३ स्थान; इस प्रकार देश के तीन भेद कहे गये हैं। जैसे—१ देश=भारतवर्ष। २ मण्डल=बंगाल, पंजाब, गुजरात, युक्तप्रान्त आदि। और ३ स्थान=कलकत्ता, बंबई, कानपुर, हाथरस, दिल्ली, बनारस आदि बड़े बड़े नगरों से लेकर छोटे से छोटे गांव तक।

काल के भेद।

वर्षं मासो दिनञ्चेति त्रिधा कालोऽपि कथ्यते॥

१ वर्ष २ मास और ३ दिन; इस प्रकार काल भी तीन तरह का कहा जाता है।

समीक्षा—यद्यपि काल के वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, घटी, पल आदि अनेक भेद शास्त्रों में पाये जाते हैं, परन्तु उक्त वाक्य में केवल तीन प्रकार के काल का जो निर्देश किया गया है, वह लोकव्यवहार को ध्यान में रखकर ही लिखा है। क्यों कि, व्यापारीगण पिछले वर्ष में उत्पन्न होने वाले पदार्थों की इस वर्ष में कैसी खपत हुई और आगे की फसल कैसी होगी? इत्यादि

बातों का अन्दाज लगाकर ही वाणिज्य-संबंधी पदार्थों का संग्रह करते हैं। इसी लिये 'वर्ष' को वेध्य माना है। साल भर में किसी किसी महीने में ही देश देशान्तर से व्यापारीगण व्यापारी मंडियों में माल खरीदने को जैसी संख्या में इकट्ठे होते हैं, तदनुसार उन उन महीनों में ही वस्तुओं के परिमाण वा मूल्य में घटाबढ़ी होते देखकर 'मास' को वेध्य माना है। इसी प्रकार दूकान में विक्रयार्थ रक्खे हुए माल की दिन भर होने वाली खरीद-बिक्री के आधार पर 'दिन' को वेध्य माना गया है।

उक्त वाक्य में वर्ष मास और दिन; यह तीनों काल सामान्य रूप से कहे गये हैं। इनकी कोई विशेष व्याख्या नरपति ने इस अर्घकाण्ड में नहीं की। किन्तु आजकल के व्यापारक्रम को देखते हुए यह उचित प्रतीत होता है कि, जिस देश में व्यापारीगण जैसा या जब से जबतक का 'वर्ष' मानते हों, उस देश में वही 'वर्ष' माना जाय। इसी तरह मास और दिन भी समझे जाँय। क्यों कि, आधुनिक व्यापारीजन जुदा जुदा कालमान मानते हैं। जैसे—हमारे भारतवर्ष में ही कुछ लोग चैत्रशुक्ल प्रतिपदा से नूतन वर्ष का आरंभ मानते हैं, तो कुछ लोग मेष-संक्रान्ति से और कोई कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से नवीन वत्सरारंभ मानते हैं। इसी तरह कहीं शुक्लादि मासगणना का प्रचार है तो कहीं कृष्णादि मास का व्यवहार चालू है। कहीं कहीं व्यापारी मंडियों में भिन्न भिन्न तिथियों से ही मासारंभ माना जाता है। इस लिये जहां के व्यापारी जैसा वर्ष, जैसा मास और जैसा दिन मानते हों, वहां उसी अवधिकाल को वेध्य मानना युक्तिसंगत जान पड़ता है। क्योंकि, नरपतिप्रणीत द्वितीय अर्घकाण्ड के:—

'गुरुसङ्क्रान्तितो वर्षं मासे भास्करसङ्क्रमात्।
दिने वारोदयादेवं त्रिधा द्रव्यार्घनिर्णयः॥

इस वचन में कहे हुए पारिभाषिक वर्ष, मास और दिन के अनुसार व्यापारकार्य का संचालन आजकल नहीं हो रहा है।

पण्य के भेद।

धातुर्मूलश्च जीवश्च त्रिधा पण्यमपीष्यते॥

खरीदने और बेचने की वस्तु को 'पण्य' कहा जाता है। पण्य भी अनेक हैं। उन्हें भी इस शास्त्र में व्यवहार और मूल्यादिनिर्णय की सुविधा के लिये १ धातु २ मूल और ३ जीव; इस प्रकार तीन तरह का माना है। जैसे—१ सुवर्ण से लेकर मिट्टी तक सभी खनिज पदार्थ और उनसे बने हुए आभूषणादि उनके विकार भी 'धातु' कहे जाते हैं। २ वृक्ष से उत्पन्न होनेवाले धान्य, औषधि, फल, फूल, तृण, काष्ठादि और उनसे बने हुए सभी पदार्थ 'मूल' कहे जाते हैं। ३ मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि सभी प्राणधारी 'जीव' कहलाते हैं। और उन जीवों से उत्पन्न होनेवाले शंख, कस्तूरी, कंबल, घी आदि पदार्थ भी 'जीव' कहे जाते हैं।

देश के वर्णादि-पञ्चक का ज्ञान।

जिस देश, मण्डल वा स्थान का विचार करना हो, उसके नाम में जो पहिला अक्षर हो, वह वर्ण, उस वर्ण का (वर्णस्वर चक्र में) जो स्वर हो, वह स्वर, और (तिथिवर्णस्वरचक्र में) उस वर्ण की जो तिथि हो, वह तिथि, नाम का पहिला वर्ण जिस मात्रास्वर से युक्त हो; वह 'शतपदचक्र' में जिस नक्षत्र में हो, वह नक्षत्र और वह नक्षत्र जिस राशि में हो, वह राशि; इस प्रकार देशादि का १ वर्ण, २ स्वर, ३ तिथि, ४ नक्षत्र ५ राशि, यह वर्णादिपञ्चक वेध्य होगा।

पण्य के वर्णादिपञ्चक का ज्ञान।

धातु, मूल, जीव में से जिस वस्तु का विचार करना हो, उस वस्तु का उस देश में जो सर्वसाधारण में प्रचलित और प्रख्यात नाम हो, उसके प्रथम वर्ण को लेकर देश के वर्णादिपञ्चक की तरह वर्णादिपञ्चक तैयार करके उनको वेध्य समझें।

काल के वर्णादिपञ्चक का ज्ञान।

काल का वर्णादिपञ्चक कभी स्थिर नहीं रहता। प्रत्येक समय में वह बदलता रहता है, जिससे वस्तुमात्र के मूल्य में बराबर परिवर्तन होता रहता है। इस लिये वर्ष, मास, दिन में से जिस समय का विचार करना हो, उस समय जो तिथि विद्यमान हो, वह तिथि। उस तिथि के (तिथि-वर्णस्वर-चक्र में) जो वर्ण और स्वर हों वे वर्ण और स्वर। विद्यमान तिथि के वर्ण का जो स्वर हो, उस स्वर से युक्त तिथि का वर्ण शतपदचक्र के जिस नक्षत्र में हो, वह नक्षत्र और वह नक्षत्र मेषादि राशिमण्डल में जिस राशि में हो; वह राशि। इस प्रकार काल का वर्णादिपञ्चक तैयार करके उनको वेध्य मानें।

नाम के विषय में कुछ आवश्यक नियम।

१ यदि किसी देश, मण्डल वा स्थान के अनेक नाम हों, तो जो नाम सब से पीछे का हो, उसी नाम के आद्यवर्ण से वर्णादिपञ्चक तैयार करें।

२ जहां के अधिकांश निवासी जिस वस्तु को जिस नाम से उच्चारण करते हों, उसी नाम के आद्यवर्ण से वर्णादिपञ्चक निर्माण करें।

३ यदि किसी स्थान अथवा वस्तु के नाम के आदि में संयुक्त अक्षर हों, तो उन दोनों या अधिक मिले हुए वर्णों में से जो सर्वप्रथम वर्ण कहा जाता हो, उस वर्ण के द्वारा वर्णादिपञ्चक बनाना चाहिये।

४ यदि किसी स्थान अथवा वस्तु के नाम के आदि में वर्ण न होकर कोई स्वर हो, तो वहां उस स्वर को ही वर्ण तथा स्वर दोनों ही रूप में माना जायगा। क्यों कि, नाम के आद्यवर्ण से शतपदचक्र में नक्षत्र का निश्चय किया जाता है। उस शतपदचक्र में तो अ इ उ ए ओ, इन स्वरशास्त्रोक्त स्वरों को वर्णरूप से ही लिखा गया है। अतएव ये पांचों स्वर नामाद्यवर्ण भी हैं और उनके स्वयं स्वर भी स्वरशास्त्रानुसार होते हैं। जैसे किसी को एक ही पुत्र हो, तो वही छोटा और वही बड़ा माना जाता है।

५ यदि किसी स्थान अथवा वस्तु के नाम के आरंभ में ऋ, ॠ, ऌ, ॡ' इन नपुंसक स्वरों में से कोई स्वर हो, तो उसे इकारयुक्त मानना चाहिये। जैसे—'ऋ' को रि, 'ॠ को री, 'ऌ' का लि और 'ॡ' को ली समझें। क्योंकि, ऋकार का सवर्णी रकार और ऌकार का सवर्णी लकार होता है। ऐसी दशा में रकार और लकार को नामाद्यवर्ण मान कर, वर्णादिपञ्चक बनाया जाय। दूसरी बात यह भी है कि, लोकभाषा में इन नपुंसक स्वरों का उच्चारण भी लोग ऐसा ही करते हैं और प्राचीन शिष्टजन इसी तरह इनका उपयोग भी करते आये हैं।

वर्णों के नक्षत्र का ज्ञान।

"चु चे चो ल पदे त्वाद्ये लि लु ले लो यमस्य भे।
अ इ उ ए इमेऽग्नेर्भे ओ व वि वु तथाऽब्जभे॥
वे वो क कि मृगे ख्याताः कु घ ङ छास्तु रौद्रभे।

के को ह हि त्वदितिभे हु हे हो ड च पुष्यभे ॥
डि डु डे डो इमे सार्पे म मि मु मे मघाभिधे ।
मो ट टि टु तथा भाग्ये टे टो पूर्व्यर्यमर्क्षके ॥
पु ष ण ठास्तथा हस्ते पे पो र रीति चित्रभे ।
रु रे रो त तथा स्वातौ ति तु ते तो द्विदैवभे ॥
न नि नु ने क्रमान्मैत्रे नो य यि यु इतीन्द्रभे ।
ये यो भ भीति मूलाख्ये भु ध फ ढा जलस्य भे ॥
भे भो ज जीति विश्वर्क्षे जु जे जो खाऽभिजिद् भवेत् ।
खि खु खे खो श्रुतौ ज्ञेया ग गि गु गे च वासवे ॥
गो स सि सु जलेशर्क्षे से सो द दीत्यजाङ्घ्रिभे ।
दु थ झ ञ तथोपान्त्ये दे दो च चीति पौष्णभे ॥
इति प्रोक्ता इमे पद्ये वर्णानामादिजाः स्फुटाः ।
ज्ञेया मेषादिराशीनां नवभिर्नवभिः पदैः ॥

(ज्यौतिषार्क)

अश्विनी से लेकर रेवतीपर्यन्त अभिजित्सहित समस्त नक्षत्रों के प्रत्येक चरण में अ इ उ ए ओ, इन पांच स्वरों से युक्त जो जो वर्ण हैं, उन वर्णों का उक्त वचनों में यथास्थान निर्देश किया गया है, जिससे नाम के स्वरयुक्त पहिले वर्ण से उस के नक्षत्र को पहिचानने में बड़ी ही सरलता हो जाती है।

वर्णस्वरचक्र ।

अ	इ	उ	ए	ओ
क छ ड ध भ व	ख ज ढ न म श	ग झ त प य ष	घ ट थ फ र स	च ठ द ब ल ह

नाम के आदि में जो पहिला वर्ण हो, वह ऊपर लिखे हुए 'वर्णस्वरचक्र' में जिस स्वर के नीचे हो, वही स्वर उस वर्ण का होता है।

तिथि-वर्णस्वरचक्र

तिथि	नन्दा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा
स्वर	अ	इ	उ	ए	ओ
वर्ण	क छ	ख ज	ग झ	घ ट	च ठ
वर्ण	ड ध	ढ न	त प	थ फ	द ब
वर्ण	भ व	म श	य ष	र स	ल ह

प्रतिपदा से पूर्णिमा तक शुक्लपक्ष में और प्रतिपदा से अमावास्या तक कृष्णपक्ष में पांच पांच तिथियाँ तीन आवृत्तियों में क्रम से नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा कही जाती हैं। उनके स्वर भी उसी क्रम से होते हैं। जैसे—नन्दा का अस्वर, भद्रा का इस्वर, जया का उस्वर, रिक्ता का एस्वर और पूर्णा का ओस्वर। एवं प्रत्येक नन्दा आदि तिथि के क्रम से ऊपर के चक्र में दो दो वर्ण हैं।

समीक्षा—यहां पर एक शंका उठती है कि, तिथि तो एक है और उसके दो वर्ण हैं; तो ऐसी दशा में फलकथन में किस वर्ण को वेध्य समझा जाय? इस शंका का यही उचित उत्तर प्रतीत होता है कि, वहाँ पर उन दो वर्णों में से पहिला वर्ण शुक्लपक्ष में और दूसरा वर्ण कृष्णपक्ष में उस तिथिका मानकर वेधफल का विचार किया जाय। क्यों कि, शुक्लपक्ष एवं कृष्णपक्ष में तिथिवेध का फल भी भिन्न भिन्न हुआ करता है। यह बात ग्रन्थकार ने आगे कही है।

यहां पर एक बात ध्यान में रखना अत्यावश्यक है कि, वर्णादिपञ्चक में वर्ण के स्वर को जो वेध्य माना है, वह स्वर सर्वदा ह्रस्व ही लेना चाहिये। क्यों कि, वह मात्रास्वर नहीं है। मात्रास्वरों में आठ युगल (जोड़े) हैं। वहां एक को वेध होने से दूसरे को भी वेध हुआ करता है। वर्णस्वर में उसका सवर्णी दूसरा स्वर नहीं मानना चाहिये।

देश, काल और पण्य के पूर्वोक्त भेदों के अनुसार प्रत्येक त्रिक के ऊपर किन किन ग्रहों का प्रभुत्व है? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि:—

अथ त्रिकत्रयस्यास्य वक्ष्यामि स्वामिखेचरान्।

अब हम पूर्वोक्त देश-मण्डल-स्थानात्मक देशत्रिक, वर्षमास-दिनात्मक कालत्रिक और धातु-मूल-जीवात्मक पण्यत्रिक के स्वामीग्रहों का वर्णन आगे की कारिकाओं द्वारा बतलावेंगे।

देशत्रिक के स्वामीग्रह।

देशेशा राहुमन्देज्या मण्डलस्वामिनः पुनः।
केतुसूर्यसिताः स्थाननाथाश्चन्द्रारचन्द्रजाः॥

देशत्रिक में देश के स्वामी राहु, शनि और गुरु हैं। मण्डल के स्वामी केतु, सूर्य और शुक्र हैं। और स्थान के स्वामी चन्द्र, मङ्गल और बुध हैं।

कालत्रिक के स्वामीग्रह।

वर्षेशा राहुकेत्वार्किजीवा मासाधिपाः पुनः।
भौमार्कज्ञसिता ज्ञेयाश्चन्द्रः स्याद्दिवसाधिपः॥

कालत्रिक में वर्ष के स्वामी राहु, केतु, शनि और गुरु हैं। मास के स्वामी मङ्गल, सूर्य, बुध और शुक्र हैं। और दिन का स्वामी चन्द्रमा है।

समीक्षा—इस वचन में मन्दगतिवाले ग्रहों का वर्ष पर इस लिये स्वामित्व माना है कि, वे ग्रह अधिक समय तक एक राशि अथवा नक्षत्र पर स्थित हो कर देशादि के वर्णादिपञ्चक पर अपना अच्छा या बुरा प्रभाव वेध और दृष्टि के द्वारा डालते रहते हैं। उनसे कुछ तीव्रगतिवाले ग्रहों का मास पर प्रभुत्व इसलिये बतलाया गया है कि, प्रायः सूर्य, मङ्गल, बुध और शुक्र एक मास तक एक राशि में रहते हुए अपना शुभाशुभ प्रभाव जगत् के सभी पदार्थों पर डालते रहते हैं। और सब से अधिक तीव्र गतिवाले चन्द्रमा का दिन पर स्वामित्व इस अभिप्राय से माना

गया है कि, प्रतिदिन व्यापारीगण अपने अपने विचार के अनुसार विशेष संख्या में अथवा विशेषरूप से अपने अपने दैनिक व्यापार कार्यों का यथावत् संचालन करते रहते हैं। इस प्रकार कालत्रिक के स्वामियों का यथाधिकार विभाजन युक्तिसिद्ध एवं यथार्थफल का द्योतक है।

पण्यत्रिक के स्वामी ग्रह।

धात्वीशाः सौरिपातारा जीवेशा ज्ञेन्दुसूरयः।
मूलेशाः केतुशुक्रार्का इति पण्याधिपा ग्रहाः॥

पण्यत्रिक में धातु के स्वामी शनि, राहु और मङ्गल हैं। जीव के स्वामी बुध, चन्द्र और गुरु हैं। और मूल के स्वामी केतु, शुक्र और सूर्य हैं।

पुंग्रहा राहुकेत्वर्कजीवभूमिसुता मताः।
स्त्रीग्रहौ शुक्रशशिनौ सौरिसौम्यौ नपुंसकौ॥

राहु केतु सूर्य गुरु और मङ्गल पुरुष ग्रह हैं। शुक्र और चन्द्र स्त्री ग्रह हैं। और शनि बुध नपुंसक ग्रह हैं।

जिन पदार्थों की पुरुष, स्त्री या नपुंसक संज्ञा हो, उनके ये स्वामी होते हैं।

जिन पदार्थों में यह किसीप्रकार भी निश्चित न हो पावे कि वे धातु मूल और जीव में से किस में समझे जाँय अथवा रंग के आधार पर ही कोई निर्णय करना अभीष्ट हो, तो वहां उन के श्वेत, रक्त, पीले और काले आदि रंगों के ऊपर ग्रहों का स्वामित्व बतलाते हैं कि:—

सितेन्दू सितवर्णेशो रक्तेशौ भौमभास्करौ।
पीतेशौ ज्ञगुरू कृष्ण-नाथाः केतुतमोऽर्कजाः॥

सफेद रंग के (पदार्थों के) स्वामी शुक्र और चन्द्र, लाल रंग के स्वामी मङ्गल और सूर्य, पीले रंग के स्वामी बुध और गुरु तथा काले रंग के स्वामी केतु, राहु और शनि हैं।

समीक्षा—यहां पर यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की है कि, ऊपर कहे हुए देशादिस्वामी स्वाभाविक हैं। देशादि की राशियों के स्वामीग्रहों का स्वामित्व इस अर्घकाण्ड में अभिमत नहीं है। भ्रम से कोई देशादि को राशियों के स्वामी ग्रहों का देशादि के ऊपर स्वामित्व न समझ लें, इसीलिये पूर्वोक्त "देशेशा राहुमन्देज्याः" इत्यादि वचन लिखे गये हैं। अन्यथा उक्त वचन निरर्थक हो जांयगे।

ऊपर कहे हुए 'देशेशा राहुमन्देज्याः' इत्यादि वचनों में किसी के दो, किसी के तीन और किसी के चार ग्रह स्वामी बतलाये हैं, तो क्या वे सभी ग्रह एकसाथ ही उस वस्तु के स्वामी हो सकते हैं? अथवा समय समय पर निजबल के अनुसार जो सब में अधिक बलवान् हो, वही देशादि का स्वामी हो सकता है? इस शंका की निवृत्ति के लिये, वर्तमान में उपलब्ध मुद्रित वा हस्तलिखित 'नरपतिजयचर्या' में जो स्वामिनिर्णायक वचन पाये जाते हैं, वे भिन्न भिन्न पाठ वाले हैं, जिन से महान् व्यामोह होता है और सही सही निर्णय करना एक महादुष्कर कार्य हो जाता है। इसलिये यहां पर स्वामिनिश्चायक सुविशुद्ध वचनों का ही उल्लेख किये देते हैं:—

ग्रहो वक्रोदयस्वांशगृहोच्चेषु बली च यः।
देशादीनां स एवैकः स्वामी खेटस्तदा मतः॥

पूर्वोक्त देशादिस्वामियों में जो ग्रह वक्रबल, उदयबल, नवांशबल, क्षेत्रबल और उच्चबल में सबसे अधिक बली हो,

वही एक ग्रह जिससमय का विचार किया जा रहा हो, उस समय देशादि का स्वामी माना जाता है।

वक्रादि बलों की पूर्णता का अवधिस्थान।

वक्रोदयांशहर्म्येषु पूर्णवीर्यो ग्रहो भवेत् ॥

तदग्रपृष्ठगे खेटे बलं त्रैराशिकान्मतम् ॥

वक्रारम्भ से वक्रसमाप्तिपर्यन्त का जितना समय हो, उसके मध्य में वक्रबल पूर्ण होता है और उस मध्यकाल से आगे—पीछे उस ग्रह का वक्रबल त्रैराशिकगणित से अनुपात-सिद्ध होता है। इसी प्रकार ग्रह का जितना उदयकाल हो, उसके मध्यभाग में उदयबल पूर्ण होता है और उस मध्यकाल से आगे-पीछे त्रैराशिक की रीति से न्यूनाधिक अनुपातसिद्ध उदयबल हुआ करता है। प्रत्येक नवांश की २०० दो सौ कलाएँ होती हैं। उनके मध्यभाग १०० सौ कला पर ग्रहों का स्वमित्रादिनवांशप्राप्त बल पूर्ण होता है। और उस मध्यभाग से आगे पीछे अनुपात-सिद्ध नवांशबल होता है। और इसी तरह ग्रहों का स्वमित्रादि-क्षेत्रानुसार प्राप्त क्षेत्रबल भी क्षेत्र के मध्यभाग १५ पन्द्रह अंशों पर पूर्ण और उससे आगे पीछे त्रैराशिक के द्वारा अनुपातसिद्ध क्षेत्र-बल होता है।

उक्त बलों से उच्चबल के परिमाण और अवधिस्थान में भेद।

उच्चांशस्थे बलं पूर्णं नीचांशस्थे बलं दलम् ।

त्रैराशिकवशाज्ज्ञेयमन्तरे तु बलं बुधैः ॥

प्रत्येक ग्रह का अपनी उच्चराशि में अपने परम उच्चांशों पर उच्चबल पूर्ण होता है और नीचराशि में अपने परम नीचांशों पर आधा उच्चबल होता है। परम नीचांश से आगे परम उच्चांश तक आधे से क्रमशः बढ़ता हुआ पूर्ण होता है और परम उच्चांशों

से क्रमशः घटते हुए परम नीचांश तक आधा उच्चबल होता है। आधा उच्चबल तो ग्रहों का सर्वदा रहता है, उससे कम कभी नहीं होता। यही अन्य बलों से उच्चबल में विशेषता है।

ग्रहों का क्षेत्रबल।

स्वक्षेत्रस्थे बलं पूर्णं पादोनं मित्रभे ग्रहे ।

अर्द्धं समगृहे ज्ञेयं पादं शत्रुगृहे स्थिते ॥

सौम्य वा क्रूर ग्रह का अपने क्षेत्र में पूर्ण, मित्रक्षेत्र में पौन, समक्षेत्र में आधा और शत्रुक्षेत्र में चौथाई बल होता है।

समीक्षा—देशादि स्वामि-निश्चायक प्रकरण में सभी शुभ वा पापग्रहों का क्षेत्रबल इसलिये तुल्य माना है कि, ग्रहों के वक्रोद-यादि अन्य बल भी सब ग्रहों के समान ही माने गये हैं। यहां पर सर्वतोभद्रचक्र में कहे हुए शुभ-पाप ग्रहों के विपरीत क्षेत्रबल का उपयोग इस लिये नहीं किया जा सकता कि, वहां तो ग्रहों के क्रूर-सौम्य, वक्र-मार्ग और उच्च-नीच एवं स्वमित्रादिक्षेत्रस्थिति के आधार पर वेधफल कहा है। और इस अर्धकाण्ड में स्वयं स्वामी और उसके मित्रादिग्रहों के न्यूनाधिक वेधपाद और दृष्टि-पादों के आधार पर फल-कथन किया गया है।

ग्रहों के स्वक्षेत्र का ज्ञान।

ग्रह—सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु

स्वक्षेत्र—सिंह कर्क मेष मिथुन धन वृष मकर कन्या मीन
वृश्चिक कन्या मीन तुला कुम्भ।

ग्रहों के मित्र-सम-शत्रुओं का ज्ञान।

चन्द्राऽऽराऽऽर्या रवेरिष्टाः समः सौम्योऽपरौ रिपू।
मित्रे चन्द्रस्य सूर्यज्ञौ समाः शेषा ग्रहा मताः॥
आर्किशुक्रौ समौ ज्ञोऽरिः शेषा मित्राणि भूसुवः॥
मित्रे सूर्यसितौ चान्द्रेश्चन्द्रोऽरिस्त्वपरे समाः॥
सौम्यशुक्रौ गुरोः शत्रू शनिर्मध्योऽपरेऽन्यथा।
शुक्रस्याऽऽर्किबुधौ मित्रे समार्याशावरी परौ॥
बुधशुक्रौ शनेर्मित्रे सम आर्योऽस्योऽपरे।
राहुकेत्वोः पुनर्मैत्री शत्रू चान्यान् ग्रहान् प्रति॥

(नरपतिजयचर्या-ज्यौतिषाङ्ग)

सूर्य के चन्द्र, मंगल और गुरु मित्र हैं। बुध सम है। शुक्र तथा शनि शत्रु हैं। चन्द्र के सूर्य और बुध मित्र हैं। शेष मंगल, गुरु, शुक्र और शनि सम हैं। चन्द्र का शत्रु कोई ग्रह नहीं है। मंगल के शनि और शुक्र सम हैं। बुध शत्रु है। शेष सूर्य, चन्द्र और गुरु मित्र हैं। बुध के सूर्य और शुक्र मित्र हैं। चन्द्रमा शत्रु है। शेष मंगल, गुरु और शनि सम हैं। गुरु के बुध और शुक्र शत्रु हैं। शनि सम है। शेष सूर्य, चन्द्र और मंगल मित्र हैं। शुक्र के शनि और बुध मित्र हैं। गुरु और मंगल सम हैं। शेष सूर्य और चन्द्रमा शत्रु हैं। शनि के बुध और शुक्र मित्र हैं। गुरु सम है। शेष सूर्य, चन्द्र और मंगल शत्रु हैं। राहु और केतु में परस्पर मित्रता है। अन्य ग्रहों के साथ इन दोनों की शत्रुता है। इनका सम ग्रह कोई नहीं है।

ग्रहमैत्री-चक्र

ग्रह	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	रा.	के.
मित्र	चं. मं. गु.	सू. बु.	सू. चं. गु.	सू. शु.	सू. चं. मं.	श. बु.	बु. शु.	के.	रा.
सम	बु.	मं. गु. शु. श.	शु. श.	मं. गु. श.	श.	मं. गु.	गु.		
शत्रु	शु. श. रा. के.	रा. के.	बु. रा. के.	चं. रा. के.	बु. शु. रा. के.	सू. चं. रा. के.	सू. चं. मं. रा. के.	सू. चं. मं. बु. गु. शु. श.	सू. चं. मं. बु. गु. शु. श.

ग्रहों के परम उच्चांश तथा नीचांश।

ग्रह —	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
उच्चराशि—	मेष	वृष	मकर	कन्या	कर्क	मीन	तुला	मिथुन	धन
परम उच्चांश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०	२०	२०
नीचराशि	तुला	वृश्चिक	कर्क	मीन	मकर	कन्या	मेष	धन	मिथुन
परन नीचांश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०	२०	२०

निश्चित किये हुए देशादिस्वामियों का प्रयोजन।

एवं देशादिनाथानां ग्रहा वेधे व्यवस्थिताः।
सुहृदः शत्रवो मध्याश्चिन्तनीयाः प्रयत्नतः॥

पूर्वोक्त क्षेत्रादिबल-निर्णय की पद्धति से निश्चित किये हुए जो देशादि के स्वामी ग्रह हैं, उनके साथ वेध में व्यवस्थित अर्थात् देशादि के वर्णादिपञ्चक पर वेध करनेवाले अन्य ग्रहों का मित्र-सम-शत्रु में से कैसा संबंध है? यह बड़े ही ध्यान से देखा जाय। क्यों कि, वस्तुमात्र के मूल्यादिनिर्णय करने में वेधक ग्रहों का मित्रादिसंबंध भी एक मुख्य आधार है।

पूर्वोक्त 'देशेशा राहुमन्देज्याः' इत्यादि वचन के द्वारा बतलाए हुए देशादि के स्वामियों में यदि किसी समय कोई दो अथवा अधिक ग्रह क्षेत्रादि बल में समानबल के हो जांय तो, उस समय उन दो ग्रहों को या अधिक ग्रहों को स्वामी मान लेना होगा। किन्तु वेधक ग्रह उन स्वामियों में से यदि किसी का मित्र और किसी का शत्रु होगा, तो वह वेधक ग्रह उस समय उन स्वामियों का सम माना जायगा। यदि वेधक ग्रह उन स्वामियों का मित्र या शत्रु होगा, तो वह मित्र या शत्रु ही बना रहेगा। ऐसी दशा में उनके मित्रादि संबंध में कोई परिवर्तन न हो सकेगा। इसीलिये

'एवं देशादिनाथानां' इत्यादि मूल वचन में 'प्रयत्नतः' शब्द दे कर ग्रन्थकार ने मित्रादि संबंध में खूब सोच समझ कर निश्चय करने का गुप्त संकेत किया है।

शुभ ग्रह के वेधफल का परिमाण।

स्वमित्रसमशत्रूणां वेधे देशादिषु क्रमात्।
शुभग्रहः शुभं दत्ते चतुस्त्रिद्व्येकपादकैः॥

देशादि के वर्णादिपञ्चक पर स्वयं उनका स्वामी, स्वामी का मित्र, स्वामी का सम और स्वामी का शत्रु ग्रह वेध करता हो और वह वेधक ग्रह शुभग्रह हो तो क्रम से चार, तीन दो और एक पाद शुभफल करता है।

पापग्रह के वेधफल का परिमाण।

स्वमित्रसमशत्रूणां वेधे देशादिषु क्रमात्।
दुष्टं दुष्टग्रहः कुर्यादेकद्वित्रिचतुष्पदैः॥

देशादि के वर्णादिपञ्चक पर स्वयं उनका स्वामी, स्वामी का मित्र, स्वामी का सम और स्वामी का शत्रु ग्रह वेध करता हो और वह वेधक ग्रह पापग्रह हो तो क्रम से एक, दो, तीन और चार पाद अपना अशुभ फल करता है।

पूर्वोक्त शुभाशुभ वेधफल की दृष्टि के द्वारा सार्थकता।

विध्यन् पूर्णदृशा पश्यँस्तत्पादेन फलं ग्रहः।
अविध्यँस्त्वन्यथा, ज्ञेयं फलं दृष्ट्यनुसारतः॥

देशादि के वर्णादि वेध्य को वेध करने वाला ग्रह जिस पाद से वेध करता हो और उस वेध्य की राशि को यदि पूर्णदृष्टि से

देखता हो, तभी उस पाद से वेधफल होता है। (इससे यह भी सिद्ध होता है कि, अल्पदृष्टि होगी तो वेध का फल भी कम होगा)। यदि वेध्य की राशि पर उस ग्रह की दृष्टि तो हो और वह वेध न करता हो तो (वेधाभाव में) दृष्टि का फल कुछ भी न होगा। क्योंकि, वेध होने पर ही उसका फल दृष्टि के अनुसार हुआ करता है।

कितनी ही पुस्तकों में :—

विद्धं पूर्णदृशा पश्यँस्तत्पादेन फलं ग्रहः।

विदधात्यन्यथा ज्ञेयं फलं दृष्ट्यनुसारतः ॥

ऐसा पाठ मिलता है। इसका अभिप्राय यह है कि, विद्ध वर्णादि को पूर्णदृष्टि से वेधक ग्रह देखता हो तो पूर्वकथित स्वमित्रादि संबंध से जितने पाद वेध होगा, वह पूर्ण होगा। अन्यथा पूर्णदृष्टि के अभाव में जितनी कम दृष्टि होगी उसके अनुसार पूर्वोक्त रीति से पूर्ण, पादोन आदि जो वेध प्राप्त होगा, वह भी कम होगा।

समीक्षा—पहिले पाठ में यह विशेषता है कि, वेधाभाव में दृष्टि का होना भी निरर्थक सिद्ध हो जाता है।

इस सर्वतोभद्रचक्र में वर्ण को फलकथन का मूल आधार माना गया है। क्योंकि, वस्तुमात्र के नाम के पहिले वर्ण से ही वर्णादिपञ्चक तैयार किया जाता है। वह वर्ण जब किसी स्वर से युक्त होता है, तब नवांश-स्वरूप हो जाता है। नरपतिजयचर्या के 'अंशचक्र' में वह किसी नक्षत्र के किसी न किसी चरण में पाया जाता है। उक्त अंशचक्र में जब उस नवांश को किसी ग्रह का वेध होता है, तब उस वेध्य नवांश की राशि पर नवांश-संबंधी राशिमण्डल में स्थित उस वेधक ग्रह की दृष्टि हो, तो वह

वेध भी फलदायक होता है। यही बात ग्रन्थकार ने आगे की कारिका में कही है कि :—

वर्णादिस्वरराशीनां मेषाद्ये राशिमण्डले।

ग्रहदृष्टिवशात्सोऽपि वेधो वर्णादिके मतः ॥

वर्ण है आदि में जिनके ऐसे स्वरों की राशि (नवांशराशि) संबंधी मेषादिराशिमण्डल (नवांश कुण्डली) में स्थित ग्रह की दृष्टि के वश से नवांशस्थ वर्णादि पर होने वाला वेध भी ग्राह्य एवं फलप्रद होता है।

नवांश-वेध-ज्ञान।

सर्वतोभद्रचक्र में पूर्वादि चारों दिशाओं में सात सात नक्षत्र हैं। प्रत्येक नक्षत्र में चार चरण होते हैं। जो ग्रह जिस नक्षत्र के जिस चरण में स्थित हो, वहां से अपने सामनेवाले नक्षत्र के सामनेवाले चरण को वेध करता है। जैसे—कृत्तिका नक्षत्र के पहिले चरण में बैठा हुआ सौम्य वा क्रूर ग्रह अपने सामनेवाले श्रवण नक्षत्र के चौथे चरण के वर्ण तथा स्वर अथवा श्रवणनक्षत्र के चौथे चरण में स्थित ग्रह को वेध करता है। इसी प्रकार कृत्तिका के दूसरे चरण में बैठा हुआ ग्रह श्रवणनक्षत्र के तीसरे चरण के वर्णादि को वेध करता है। तीसरे चरण में स्थित ग्रह सामने वाले नक्षत्र के दूसरे चरण को और चौथे चरण में बैठा हुआ ग्रह सामनेवाले नक्षत्र के प्रथम चरण के वर्णादि को वेध करता है। यह नवांशवेध तभी फलदायक होता है, जब कि नवांश-संबंधी राशिमण्डल में वेधक ग्रह की वेध्य नवांश की राशि पर दृष्टि हो। नवांशवेध में केवल संमुख वेध ही होता है—वाम-दाक्षिणवेध नहीं होता। नवांशवेध में भले ही वेधक ग्रह वक्री, शीघ्री अथवा मध्यचारी क्यों न हो, उसका संमुख वेध ही होता है।

यदि किसी नक्षत्र के किसी चरण में दो तीन या अधिक ग्रह विद्यमान हों, तो ऐसी दशा में जो ग्रह उन सब में विजयी होगा, उसी ग्रह के वेध का फल होगा—अन्य (पराजित) ग्रहों का नहीं। जय-पराजय का ज्ञान उन ग्रहों के शर और क्रान्ति से हुआ करता है। जो ग्रह उत्तर क्रान्ति वा शर में होता है; वह दक्षिणक्रान्ति वा शर वाले ग्रह से विजयी माना जाता है। यदि दोनों ग्रहों की एक ही क्रान्ति (उत्तर वा दक्षिण) अथवा शर हो तो ऐसी स्थिति में उत्तरक्रान्ति वा शर में जो अधिकांशी ग्रह होता है, वह विजयी होता है और दक्षिणक्रान्ति वा शर की एकता में न्यूनांशी ग्रह विजयी हुआ करता है। इस विषय में बृहत्संहिता आदि प्राचीन आर्षग्रथों में विशेष व्यवस्था देखने को मिलेगी। विस्तार-भय से यहां नहीं लिख रहे हैं।

समीक्षा—यह नवांशवेध भी पूर्वोक्त 'घ ङ छ' आदि वर्णों के वेध की तरह वाम, संमुख और दक्षिण, इन तीनों मूलपरिभाषानुसारी वेध से भिन्न प्रकार का नवांश- वेध है। इस वेध का भी फलकल्पना में अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

शास्त्रदृष्टि से मेषादि प्रत्येक राशि में सवा दो नक्षत्र, प्रत्येक नक्षत्र के चरणोंमें अकारादि पांच स्वरों से युक्त वर्णों के विद्यमान होने से, वर्णादि की राशि पर जिस वेधक ग्रह की दृष्टि होगी, उस ग्रह की तद्राशिगत नक्षत्र, वर्ण और स्वरों पर भी दृष्टि मानी जा सकती है; किन्तु देशादि के वर्णादिपञ्चक में तिथि का ग्रहण भी किया गया है और तिथि का किसी भी राशि में होना कहीं भी शास्त्रकारों ने नहीं बतलाया है, ऐसी दशा में तिथि के ऊपर वेधक ग्रह की दृष्टि किस प्रकार मानी जाय ? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि:—

स्वस्ववर्णाः स्वचक्रोक्तास्तिथिवेधेन पीड़िताः।
तिथिवर्णेषु यो राशिस्तद्दृष्टौ तन्निरीक्षणम्॥

स्वचक्रोक्त (तिथि-वर्णस्वरचक्र में बतलाये हुए) तिथियों के जो अपने अपने (निज) वर्ण हैं, वे वर्ण तिथि को वेध होने से पीड़ित अर्थात् विद्ध होते हैं। तात्पर्य यह कि, तिथि को वेध होने पर तिथि के वर्ण को वेध माना जाता है। और तिथि के वर्ण की जो राशि हो, उस पर वेधक ग्रह की दृष्टि हो, तो वह दृष्टि तिथि पर भी मानी जाती है।

शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष में तिथिवेध का फलभेद।

अशुभो वा शुभो वाऽपि शुक्ले विध्यँस्तिथिं ग्रहः।
सर्वं निजफलं दत्ते कृष्णपक्षे तु तद् दलम्॥

तिथि को वेध करनेवाला अशुभ वा शुभ ग्रह शुक्लपक्ष में अपना सम्पूर्ण फल करता है और कृष्णपक्ष में आधा।

समीक्षा—उक्त वाक्य में सामान्यतया तिथिवेध का फल-कथन किया गया है। इसलिये देश, काल और पण्य के वर्णादि-पञ्चक में जो तिथि हो, उसका शुक्ल-कृष्ण पक्ष के भेद से सम्पूर्ण और आधा वेधफल ग्रहण करना चाहिये।

स्थितिजवेध में दृष्टि की व्यवस्था।

खेटकस्यांशके ज्ञेया पूर्णा दृष्टिः सदा बुधैः।
दृष्टिहीने पुनर्वेधे न स्यात् किञ्चिच्छुभाशुभम्॥

ग्रह की स्वाधिष्ठित नवांश पर विद्वानों को सर्वदा पूर्णदृष्टि जानना चाहिये। क्योंकि, दृष्टिहीन वेध का कुछ भी शुभाशुभ फल नहीं होता।

समीक्षा—कुछ विद्वानों ने इस वचन का ऐसा अर्थ किया है

कि, ग्रह की अपने नवांश पर राशिमण्डल में भले ही एकपादादि दृष्टि क्यों न हो; किन्तु वहां पर सदा पूर्णदृष्टि ही मानना चाहिये। परन्तु इस अर्थ में यह दूषण उपस्थित होता है कि, राहु—केतु का कोई भी अपना नवांश न होने से वेधफल कुछ का कुछ होगा। अतएव वेधक ग्रह जिस नवांश में स्थित होता है, उस नवांशराशि पर यद्यपि दृष्टि नहीं हुआ करती तथापि वहां सर्वदा पूर्णदृष्टि ही मानना और फल का निश्चय करना चाहिये; यही समुचित अर्थ प्रतीत होता है।

मूल्य-निर्णायक प्रकरण की पूर्ति करते हैं कि:—

इत्येवं दृष्टिभेदेन निर्दिष्टं सकलं फलम्।
वर्णादिपञ्चके विद्धे ग्रहो दत्ते शुभाशुभम्॥

देशादि के वर्णादिपञ्चक पर वेध होने पर शुभाशुभ ग्रह जैसा अपना शुभाशुभ फल करता है, वैसा सम्पूर्ण फल दृष्टिभेद के द्वारा ऊपर दिखाया गया है।

वेध और दृष्टि के द्वारा शुभाशुभ ग्रह के फल-विंशोपक।

सौम्यः पूर्णदृशा पश्यन् विध्यन् वर्णादिपञ्चकम्।
फलविंशोपकान् पञ्च क्रूरस्तु चतुरो दिशेत्॥

बुध, गुरु, शुक्र और चन्द्र; यह चार ग्रह सौम्य हैं। इस अर्घकाण्ड में क्रूरयुक्त बुध और क्षीणचन्द्र क्रूर कभी नहीं होते। क्योंकि, शुभग्रह-विंशोपक की पूर्णता भी २० है। और क्रूरग्रह-विंशोपक की पूर्णता भी २० ही है। अन्यथा जब देखो तब क्रूर-विंशोपक ही शेष रहा करेंगे और शुभ कोटि तथा अशुभ कोटि बराबर न हो सकेगी। अतएव एक सौम्य ग्रह जब देशादि के वर्ण आदि पाँचों वेध्यों को पूर्णवेध एवं पूर्णदृष्टि करता है, तब वह पाँच फलविंशोपक देता है। क्यों कि, शुभकोटि के सम्पूर्ण

फल-विंशोपक २० हैं और सौम्यग्रह ४ हैं। अतएव २० में ४ का भाग देने से एक सौम्यग्रह को ५ फलविंशोपक मिलते हैं। इसी प्रकार एक क्रूरग्रह जब देशादि के वर्ण आदि पाँचों वेध्यों को पूर्णवेध और पूर्णदृष्टि करता है, तब वह चार फलविंशोपक देता है। क्योंकि, पापकोटि के संपूर्ण फलविंशोपक भी २० ही हैं; किन्तु क्रूरग्रह पाँच हैं। इसलिये २० में ५ का भाग देने से एक क्रूर ग्रह को ४ फलविंशोपक मिलते हैं।

पूर्णवेध और पूर्णदृष्टि के अभाव में फलविंशोपकों के जानने की युक्ति बतलाते हैं कि:—

वर्णादिपञ्चके यावत्स्थानवेधे च यावती।
दृष्टिस्तदनुमानेन वाच्या विंशोपका बुधैः॥

देशादि के वर्णादिपञ्चक पर वेधक ग्रहोंका स्वमित्रादि स्थानों से जितने पाद वेध हो, उस वेध के फलविंशोपकों की कल्पना विद्वानों को चाहिये कि, विद्ध वर्णादि की राशिपर जितने पाद दृष्टि हो, उस दृष्टि के अनुमान से करें। अर्थात् उस वेध का फल दृष्टि के आधार पर निश्चित करें।

स्वमित्रादिस्थानों से ग्रहों का पूर्ण, पादोन आदि पादात्मक वेध तो पूर्वोक्त 'स्वमित्रसमशत्रूणां' इत्यादि वचनों द्वारा कहा जा चुका है। दृष्टि के पादों की व्यवस्था भी नरपति आचार्य ने अपने ज्योतिषाङ्क में इस प्रकार की है कि:—

कर्माग्नी पञ्चनन्दौ च गजाब्धी सप्तमं तथा।
पादवृद्ध्या निरीक्षन्ते ग्रहा लग्नानि सर्वदा॥

खतृतीयं त्रिकोणञ्च चतुरस्रं यथाक्रमम् ।
सर्वदृष्ट्या प्रपश्यन्ति ग्रहा मन्दार्यभूसुताः ॥

सब ग्रहों की तीसरे और दसवें स्थान पर एक पाद, पांचवें और नवें स्थान पर दो पाद, चौथे तथा आठवें स्थान पर तीन पाद और सातवें स्थान पर चार पाद (पूर्ण) दृष्टि होती है। किन्तु शनि, गुरु और मंगल की दृष्टि के विषय में इतना विशेष भेद है कि, शनि तीसरे और दसवें स्थान पर, गुरु पांचवें और नवें स्थान पर और मंगल चौथे और आठवें स्थान पर विशेषरूप से पूर्णदृष्टि करता है।

समीक्षा—सारांश यह है कि, ग्रहों के वेध का फल उनकी दृष्टि के अनुसार ही हुआ करता है। और ऊपर कहा हुआ विंशोपकानयन-प्रकार एक ग्रह का है। यदि वेधक ग्रहों की संख्या एक से अधिक हो, तो वहां पर उन ग्रहों के विंशोपक भी पूर्वोक्त रीति से पृथक् पृथक् बनाना चाहिये। सर्वत्र एक वेध्य में विंशोपक का मान एक पञ्चमांश होगा; यह ध्यानपूर्वक देखना चाहिये।

यहां तक फलविंशोपकों के निर्माण करने का विधान बतलाया है। अब इसके आगे का कर्तव्य बतलाते हैं कि :—

एवं विंशोपका येऽत्र सम्भवन्ति शुभाशुभाः ।
ते शुभा एकतः स्थाप्या अशुभास्त्वन्यतः पृथक् ॥
शुभाशुभस्वरूपस्य राशियुग्मस्य मध्यतः ।
बह्वल्पयोरन्तरं तच्छेषं ज्ञेयं शुभाशुभम् ॥

इष्टकाल पर पूर्वोक्त प्रकार से देश, काल और पण्य के वर्णापञ्चक पर शुभाशुभ ग्रहों के वेध और उनकी दृष्टि के अनुसार जो शुभ वा अशुभ फलविंशोपक तैयार हों, उनमें से शुभ विंशोपकों को एक तरफ और अशुभ विंशोपकों को दूसरी तरफ जुदा जुदा रक्खे। फिर उन शुभाशुभ विंशोपकों का जुदा जुदा योग करे। बाद में, दोनों तरफ के योगों में से जिधर का योग अधिक हो, उसमें से जिधर के फलविंशोपकों का योग कम हो, उसको घटा देने से जिधर के जितने फलविंशोपक शेष बचें, तदनुसार वस्तु का शुभाशुभ फल समझना चाहिये। यदि शुभ ग्रहों के विंशोपक शेष बचें तो शुभफल और अशुभ ग्रहों के विंशोपक शेष बचें तो अशुभ फल जानना चाहिये।

घटाबढ़ी जानने की वास्तविक युक्ति।

वर्तमानार्घविंशांशकल्पना तेषु च क्रमात् ।
वर्तमानार्घके देयाः पात्याश्चैवं शुभाशुभाः ॥

जिस तरह ऊपर कही हुई रीति से वर्ष, मास, दिनात्मक जिस समय की वस्तु की तेजी मंदी जानने के लिये, देश-काल-पण्य के वर्णादिपञ्चकों पर ग्रहों के वेध और दृष्टि के अनुसार शुभाशुभ फलविंशोपकों का शेष निकाला है, उसी तरह वर्तमान समय (पिछले बंद भाव होने के समय) पर भी देशादि के वर्णादिपञ्चक पर ग्रहों के वेध और दृष्टि के अनुसार विंशांश अर्थात् विंशोपकों की कल्पना (निर्माण) करे। बाद में इन दोनों शेष विंशोपकों का अन्तर करे। यदि प्रथम इष्टकाल के शुभ फलविंशोपकों से द्वितीय इष्टकाल के शुभ फलविंशोपक अधिक हों तो वे शुभसंज्ञक होते हैं और वे यदि न्यून हों तो अशुभसंज्ञक होते हैं। इसी प्रकार प्रथम इष्टकालके अशुभ फलविंशोपकों से द्वितीय इष्टकाल के अशुभ फलविंशोपक अधिक हों, तो वे अशुभसंज्ञक और न्यून हों तो वे शुभ-संज्ञक होते हैं। प्रथम

इष्टकाल के शेष फलविंशोपकों से द्वितीय इष्टकाल के शुभ वा अशुभ शेष फलविंशोपक जितने अधिक वा न्यून हों, तदनुसार वस्तु के परिमाण वा मूल्य में उन शेष बचे हुए फलविंशोपकों के हिसाब से घटाना या बढ़ाना चाहिये।

समीक्षा—अधिकांश विद्वानों ने इस कारिका का सीधा-साधा यह अर्थ किया है कि, जिस वस्तु का जिस समय का निर्णय करना हो, तो उस वस्तु के वर्तमान (वर्ष, मास तथा दिन के प्रवेश काल) में जो भाव हो, उसके बीस भागकी कल्पना करे। उनमें से एक भाग को एक विंशोपक की बराबर मान कर, पूर्वोक्त क्रम से प्राप्त शेष विंशोपक यदि शुभ ग्रह के हों, तो उनको जोड़ देना और क्रूर ग्रहों के हों तो उनको घटा देना। वस्तु के विंशोपक बढ़ें तो वस्तु की वृद्धि और मूल्य की हानि होती है। और वस्तु के विंशोपक घटें तो वस्तु की हानि और मूल्य की वृद्धि होती है। परन्तु इस रीति से निर्माण किये हुए विंशोपक यदि शुभ शेष बचेंगे तब किसी वस्तु का वर्तमान मूल्य २००) रु० होगा तो पांच आने से कम की मंदी और अशुभ बचेंगे तो।) चार आने से कम की तेजी कभी न मिलेगी। ऐसे विंशोपक किसी तरह भी शेष न बचेंगे, जिन से आना दो आना की तेजीमंदी भी सिद्ध हो सके। इस लिये ऊपर कही हुई हमारी युक्ति ही ठीक है। उसमें यह दूषण नहीं होता।

परिशिष्ट

फलादेश के लिये पञ्चाङ्ग कैसा हो ?

फलकथन के लिये—छोटे से छोटे और बड़े से बड़े काम के लिये—'पञ्चाङ्ग' ही सबसे उत्तम और मुख्य साधन है। पञ्चाङ्ग के निर्माण करने में इस समय दो पद्धतियां प्रचलित हैं। एक 'निरयन' और दूसरी 'सायन'। भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र निरयनपद्धति का ही प्रचार है और पाश्चात्य देशों में अबाधरूप से सायनपद्धति का। 'सायन' किंवा 'निरयन' किसी भी पद्धति से पञ्चाङ्ग बनाया जाय, किन्तु उसका गणितविधान कैसा हो, इस विषय में ज्योतिश्शास्त्रप्रवर्तक महर्षियों तथा उच्चकोटि के अनुभवी विद्वानों का एकमुख यही कहना है कि—"वही गणित सच्चा और फल की सत्यता को प्रमाणित करनेवाला होता है, जिसका आकाशस्थ ग्रह, नक्षत्र आदि से ठीकठीक मिलान हो जाय और उसके आधार पर निश्चित किया हुआ फल का समय भी पल-विपल तक सही हो।" अतएव यह निर्विवाद है कि,

फलादेश के लिये विविध यन्त्रों द्वारा सिद्ध स्पष्ट ग्रहगणित को ही काम में लाना चाहिये ! यह काम उच्चकोटि की 'वेधशाला' के बिना हो नहीं सकता। भारतीय वेधशालाओं की अपेक्षा ग्रीनविच की वेधशाला इस समय सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है। उसके आधार पर सायनपद्धति से बनाये हुए पञ्चाङ्गों में 'राफाइल' के पञ्चाङ्ग को हम फलादेश के लिए अधिक उपयोगी समझते हैं। क्योंकि, उसमें ग्रहों का दैनिक स्पष्टीकरण, ग्रहों के राशिभोग, शरभोग तथा क्रान्तिभोग की गति एवं ग्रहों के शरपरिवर्तन आदि निर्णयोपयोगी अनेक आवश्यक साधनों का समावेश है। परन्तु जब तक वैसा निर्णयोपयोगी कोई भारतीय पञ्चाङ्ग प्रकाशित न हो, तबतक राफाइल की 'एफीमरी' (अंग्रेजी पंचाङ्ग) को काम में लाने के लिये, हम अपने भारतवासी फलवक्ताओं से साग्रह अनुरोध करते हैं, जिससे उन्हें फलकथन में अधिकाधिक सफलता प्राप्त हो। जो लोग अंग्रेजी नहीं जानते, वे काशी के दिग्दिगन्तविख्यातकीर्ति महामहोपाध्याय श्रीयुत पण्डित प्रवर बापूदेवजी शास्त्री सी० आई० के पञ्चाङ्ग, या कलकत्ता की 'विशुद्धसिद्धान्तपञ्जिका' अथवा 'सन्देश' और 'जन्मभूमि' नाम के गुजराती पञ्चाङ्गों को काम में लावें। क्योंकि, व्यापारसम्बन्धी अत्यन्त सूक्ष्म और जिम्मेदारी के काम के लिये उक्त पञ्चाङ्गों का गणितविधान विशेष विश्वसनीय सिद्ध हो चुका है।

—:०:—

क्षेत्रबल-सारिणी

अंशफल

क्षेत्र अंश	स्व पूर्ण '	मित्र तीनपाद '	सम दोपाद '	शत्रु एकपाद '	क्षेत्र अंश	स्व पूर्ण '	मित्र तीनपाद '	सम दोपाद '	शत्रु एकपाद '
१	४	३	२	१	१६	५६	४२	२८	१४
२	८	६	४	२	१७	५२	३९	२६	१३
३	१२	९	६	३	१८	४८	३६	२४	१२
४	१६	१२	८	४	१९	४४	३३	२२	११
५	२०	१५	१०	५	२०	४०	३०	२०	१०
६	२४	१८	१२	६	२१	३६	२७	१८	९
७	२८	२१	१४	७	२२	३२	२४	१६	८
८	३२	२४	१६	८	२३	२८	२१	१४	७
९	३६	२७	१८	९	२४	२४	१८	१२	६
१०	४०	३०	२०	१०	२५	२०	१५	१०	५
११	४४	३३	२२	११	२६	१६	१२	८	४
१२	४८	३६	२४	१२	२७	१२	९	६	३
१३	५२	३९	२६	१३	२८	८	६	४	२
१४	५६	४२	२८	१४	२९	४	३	२	१
१५	६०	४५	३०	१५	३०	०	०	०	०

बलसाधन में ६० कला को सर्वत्र पूर्ण (१) मानिये।

—:०:—

क्षेत्रबल-सारिणी

कलाफल

क्षेत्र कला	स्व पूर्ण	मित्र तीनपाद	सम दोपाद	शत्रु एकपाद	क्षेत्र कला	स्व पूर्ण	मित्र तीनपाद	सम दोपाद	शत्रु एकपाद
	”	”	”	”		’ ”	’ ”	”	”
१	४	३	२	१	२०	१।२०	१।०	४०	२०
१	८	६	४	२	२१	१।२४	१।३	४२	२१
३	१२	९	६	३	२२	१।२८	१।६	४४	२२
४	१६	१२	८	४	२३	१।३२	१।९	४६	२३
५	२०	१५	१०	५	२४	१।३६	१।१२	४८	२४
६	२४	१८	१२	६	२५	१।४०	१।१५	५०	२५
७	२८	२१	१४	७	२६	१।[illegible]४	१।१८	५२	२६
८	३२	२४	१६	८	२७	१।४८	१।२१	५४	२७
९	३६	२७	१८	९	२८	१।५२	१।२४	५६	२८
१०	४०	३०	२०	१०	२९	१।५६	१।२७	५८	२९
११	४४	३३	२२	११				’ ”	
१२	४८	३६	२४	१२	३०	२।०	१।३०	१।०	३०
१३	५२	३९	२६	१३	३१	२।४	१।३३	१।२	३१
१४	५६	४२	२८	१४	३२	२।८	१।३६	१।४	३२
	’ ”				३३	२।१२	१।३९	१।६	३३
१५	१।०	४५	३०	१५	३४	२।१६	१।४२	१।८	३४
१६	१।४	४८	३२	१६	३५	२।२०	१।४५	१।१०	३५
१७	१।८	५१	३४	१७	३६	२।२४	१।४८	१।१२	३६
१८	१।१२	५४	३६	१८	३७	२।२८	१।५१	१।१४	३७
१९	१।१६	५७	३८	१९	३८	२।३२	१।५४	१।१६	३८

क्षेत्रबल-सारिणी

कलाफल

क्षेत्र कला	स्व पूर्ण	मित्र तीनपाद	सम दोपाद	शत्रु एकपाद	क्षेत्र कला	स्व पूर्ण	मित्र तीनपाद	सम दोपाद	शत्रु एकपाद
	’ ”	’ ”	’ ”	”		’ ”	’ ”	’ ”	”
३९	२।३६	१।५७	१।१८	३९	५१	३।२४	२।३३	१।४२	५१
४०	२।४०	२।०	१।२०	४०	५२	३।२८	२।३६	१।४४	५२
४१	२।४४	२।३	१।२२	४१	५३	३।३२	२।३९	१।४६	५३
४२	२।४८	२।६	१।२४	४२	५४	३।३६	२।४२	१।४८	५४
४३	२।५२	२।९	१।२६	४३	५५	३।४०	२।४५	१।५०	५५
४४	२।५६	२।१२	१।२८	४४	५६	३।४४	२।४८	१।५२	५६
४५	३।०	२।१५	१।३०	४५					
४६	३।४	२।१८	१।३२	४६	५७	३।४८	२।५१	१।५४	५७
४७	३।८	२।२१	१।३४	४७	५८	३।५२	२।५४	१।५६	५८
४८	३।१२	२।२४	१।३६	४८	५९	३।५६	२।५७	१।५८	५९
४९	३।१६	२।२७	१।३८	४९					’ ”
५०	३।२०	२।३०	१।४०	५०	६०	४।०	३।०	२।०	१।०

इस क्षेत्रबल की अंश-फल-सारिणी में राशि के आरम्भ से प्रत्येक अंश का स्वमित्रादि क्षेत्रानुसार पूर्ण पादोन आदि जो कलात्मक फल दिया है, वह अंश की समाप्ति का है। १५ अंश तक विद्यमान अंश के फल से आगे की कला-विकला के फल को जो कला-सारिणी में दिया गया है, विद्यमान अंश के फल में जोड़ना होगा। और १५ अंश से यदि अधिक अंश हों, तो अंशफल तो वही रहेगा, जो अंश-फल-सारिणी में दिया हुआ है। किन्तु आगे की कला-विकला के फल को १५ से अधिक अंश के फल में से घटाना होगा।

विकला के फलसाधनार्थ यही कलाफलसारिणी काम में आती है। अन्तर केवल इतना ही है कि, इस कलाफलसारिणी में दिये हुए विकलात्मक फल को प्रतिविकलात्मक समझें।

उदाहरण;—

जैसे—किसी इष्टकाल पर राश्यादि स्पष्ट सूर्य ४। ७। २५। ५२ है तो वह सूर्य स्वक्षेत्र में होने के कारण पूर्ण बल पाता है। उक्त सारिणी द्वारा इस प्रकार क्षेत्रबल प्राप्त होगा :—

	कला	विकला	प्रति विकला
अंशफल	२८	०	०
कलाफल	१	४०	०
विकलाफल	०	०	३।२८
योग	२९	४०	३।२८

यह सूर्य का उस समय क्षेत्रबल हुआ-जो आधे से कुछ ही कम है।

क्षेत्रबल साधन की सुगम रीति।

प्रत्येक ग्रह का शत्रु क्षेत्र में १५ अंश तक जो अंश, कला, विकला हों, वही कलादि क्षेत्रबल होता है।

समक्षेत्र में १५ अंश तक जो अंश कला विकला हों, उनको दुगुना करने से जो कलादि फल प्राप्त हो, वह क्षेत्रबल होता है।

मित्रक्षेत्र में १५ अंश तक जो अंश कला विकला हों, उनको तिगुना करने से जो कलादि फल प्राप्त हो, वह क्षेत्रबल होता है।

स्वक्षेत्र में १५ अंश तक जो अंश कला विकला हों उनको चौगुना करने से जो कलादि फल उपलब्ध हो, वह क्षेत्रबल होता है,

यदि १५ अंश से अधिकांशी ग्रह हो तो ३० अंशों में से घटाने पर जो शेष अंश बचें, उनका क्षेत्रबल पूर्वोक्त रीति से स्वमित्रादि क्षेत्र के अनुसार निर्माण करें।

नवांशबलसारिणी

नवांश कला	स्व पूर्ण	मित्र तीनपाद	सम दोपाद	शत्रु एकपाद
	कलाफल			
	' "	' "	' "	' "
१	०।३६	०।२७	०।१८	०।९
२	१।१२	०।५४	०।३६	०।१८
३	१।४८	१।२१	०।५४	०।२७
४	२।२४	१।४८	१।१२	०।३६
५	३।०	२।१५	१।३०	०।४५
६	३।३६	२।४२	१।४८	०।५४
७	४।१२	३।९	२।६	१।३
८	४।४८	३।३६	२।२४	१।१२
९	५।२४	४।३	२।४२	१।२१
१०	६।०	४।३०	३।०	१।३०
११	६।३६	४।५७	३।१८	१।३९
१२	७।१२	५।२४	३।३६	१।४८
१३	७।४८	५।५२	३।५४	१।५७
१४	८।२४	६।१८	४।१२	२।६
१५	९।०	६।४५	४।३०	२।१५
१६	९।३६	७।१२	४।४८	२।२४
१७	१०।१२	७।३९	५।६	२।३३
१८	१०।४८	८।६	५।२४	२।४२
१९	११।२४	८।३३	५।४२	२।५१
२०	१२।०	९।०	६।०	३।०
२१	१२।३६	९।२७	६।१८	३।९
२२	१३।१२	९।५४	६।३६	३।१८
२३	१३।४८	१०।२१	६।५४	३।२७
२४	१४।२४	१०।४८	७।१२	३।३६
२५	१५।०	११।१५	७।३०	३।४५

नवांश कला	स्व पूर्ण , "	मित्र तीनपाद , "	सम दोपाद , "	शत्रु एकपाद , "
२६	१५।३६	११।४२	७।४८	३।५४
२७	१६।१२	१२।६	८।६	४।३
२८	१६।४८	१२।३६	८।२४	४।१२
२९	१७।२४	१३।३	८।४२	४।२१
३०	१८ ०	१३।३०	९।०	४।३०
३१	१८।३६	१३।५७	९।१८	४।३९
३२	१९।१२	१४ २४	९।३६	४।४८
३३	१९।४८	१४।५१	९।५४	४।५७
३४	२०।२४	१५।१८	१०।१२	५।६
३५	२१।०	१५।४५	१०।३०	५।१५
३६	२१।३६	१६।१२	१०।४८	५।२४
३७	२२।१२	१६।३९	११।६	५।३३
३८	२२।४८	१७।६	११।२४	५।४२
३९	२३।२४	१७।३३	११।४२	५।५१
४०	२४।०	१८।०	१२।०	६।०
४१	२४।३६	१८।२७	१२।१८	६।९
४२	२५।१२	१८।५४	१२।३६	६।१८
४३	२५।४८	१९।२१	१२।५४	६।२७
४४	२६।२४	१९।४८	१३।१२	६।३६
४५	२७।०	२०।१५	१३।३०	६।४५
४६	२७।३६	२०।४२	१३।४८	६।५४
४७	२८।१२	२१।९	१४।६	७।३
४८	२८।४८	२१।३६	१४।२४	७।१२
४९	२९।२४	२२।३	१४।४२	७।२१
५०	३०।०	२२।३०	१५।०	७।३०

नवांशबलसारिणी

कलाफल

नवांश कला	स्व पूर्ण , "	मित्र तीनपाद , "	सम दोपाद , "	शत्रु एकपाद , "
५१	३०।३६	२२।५७	१५।१८	७।३९
५२	३१।१२	२३।२४	१५।३६	७।४८
५३	३१।४८	२३।५१	१५।५४	७।५७
५४	३२।२४	२४।१८	१६।१२	८।६
५५	३३।०	२४।४५	१६।३०	८।१५
५६	३३।३६	२५।१२	१६।४८	८।२४
५७	३४।१२	२५।३९	१७।६	८।३३
५८	३४।४८	२६।६	१७।२४	८।४२
५९	३५।२४	२६।३३	१७।४२	८।५१
६०	३६।०	२७।०	१८।०	९।०
६१	३६।३६	२७।२७	१८।१८	९।९
६२	३७।१२	२७।५४	१८।३६	९।१८
६३	३७।४८	२८।२१	१८।५४	९।२७
६४	३८।२४	२८।४८	१९।१२	९।३६
६५	३९।०	२९।१५	१९।३०	९।४५
६६	३९।३६	२९।४२	१९।४८	९।५४
६७	४०।१२	३०।९	२०।६	१०।३
६८	४०।४८	३०।३६	२०।२४	१०।१२
६९	४१।२४	३१।३	२०।४२	१०।२१
७०	४२।०	३१।३०	२१।०	१०।३०
७१	४२।३६	३१।५७	२१।१८	१०।३९
७२	४३।१२	३२।२४	२१।३६	१०।४८
७३	४३।४८	३२।५१	२१।५४	१०।५७
७४	४४।२४	३३।१८	२२।१२	११।६
७५	४५।०	३३।४५	२२।३०	११।१५

नवांश कला	स्व पूर्ण ' "	मित्र तीनपाद ' "	सम दोपाद ' "	शत्रु एकपाद ' "
७६	४५।३६	३४।१२	२२।४८	११।२४
७७	४६।१२	३४।३९	२३।६	११।३३
७८	४६।४८	३५।६	२३ २४	११।४२
७९	४७।२४	३५।३३	२३।४२	११।५१
८०	४८।०	३६।०	२४।०	१२।०
८१	४८।३६	३६।२७	२४।१८	१२।९
८२	४९।१२	३६।५४	२४।३६	१२।१८
८३	४९।४८	३७।२१	२४।५४	१२।२७
८४	५०।२४	३७।४८	२५।१२	१२।३६
८५	५१।०	३८।१५	२५।३०	१२।४५
८६	५१।३६	३८।४२	२५।४८	१२।५४
८७	५२।१२	३९।९	२६।६	१३।३
८८	५२।४८	३९।३६	२६।२४	१३।१२
८९	५३।२४	४०।३	२६।४२	१३।२१
९०	५४।०	४०।३०	२७।०	१३।३०
९१	५४।३६	४०।५७	२७।१८	१३।३९
९२	५५।१२	४१।२४	२७।३६	१३।४८
९३	५५।४८	४१।५१	२७।५४	१३।५७
९४	५६।२४	४२।१८	२८।१२	१४।६
९५	५७।०	४२।४५	२८।३०	१४।१५
९६	५७।३६	४३।१२	२८।४८	१४।२४
९७	५८।१२	४३।३९	२९।६	१४।३३
९८	५८।४८	४४।६	२९।२४	१४।४२
९९	५९।२४	४४।३३	२९।४२	१४।५१
१००	६०।०	४५।०	३०।०	१५।०

नवांशबलसारिणी

विकालफल

नवांश विकला	स्व पूर्ण ' " "'	मित्र तीनपाद ' " "'	सम दोपाद ' " "'	शत्रु एकपाद ' " "'
१	०।०।३६	०।०।२७	०।०।१८	०।०।९
२	०।१।१२	०।०।५४	०।०।३६	०।०।१८
३	०।१।४८	०।१।२१	०।०।५४	०।०।२७
४	०।२।२४	०।१।४८	०।१।१२	०।०।३६
५	०।३।०	०।२।१५	०।१।३०	०।०।४५
६	०।३।३६	०।२।४२	०।१।४८	०।०।५४
७	०।४।१२	०।३।९	०।२।६	०।१।३
८	०।४।४८	०।३।३६	०।२।२४	०।१।१२
९	०।५।२४	०।४।३	०।२।४२	०।१।२१
१०	०।६।०	०।४।३०	०।३।०	०।१।३०
११	०।६।३६	०।४।५७	०।३।१८	०।१।३९
१२	०।७।१२	०।५।२४	०।३।३६	०।१।४८
१३	०।७।४८	०।५।५१	०।३।५४	०।१।५७
१४	०।८।२४	०।६।१८	०।४।१२	०।२।६
१५	०।९।०	०।६।४५	०।४।३०	०।२।१५
१६	०।९।३६	०।७।१२	०।४।४८	०।२।२४
१७	०।१०।१२	०।७।३९	०।५।६	०।२।३३
१८	०।१०।४८	०।८।६	०।५।२४	०।२।४२
१९	०।११।२४	०।८।३३	०।५।४२	०।२।५१
२०	०।१२।०	०।९।०	०।६।०	०।३।०
२१	०।१२।३६	०।९।२७	०।६।१८	०।३।९
२२	०।१३।१२	०।९।५४	०।६।३६	०।३।१८
२३	०।१३।४८	०।१०।२१	०।६।५४	०।३।२७
२४	०।१४।२४	०।१०।४८	०।७।१२	०।३।३६
२५	०।१५।०	०।११।१५	०।७।३०	०।३।४५
२६	०।१५।३६	०।११।४२	०।७।४८	०।३।५४
२७	०।१६।१२	०।१२।९	०।८।६	०।४।३
२८	०।१६।४८	०।१२।३६	०।८।२४	०।४।१२
२९	०।१७ २४	०।१३।३	०।८।४२	०।४।२१
३०	०।१८।०	०।१३।३०	०।९।०	०।४।३०

नवांश विकला	स्व पूर्ण ' '' '''	मित्र तीनपाद ' '' '''	सम दोपाद ' '' '''	शत्रु एकपाद ' '' '''	नवांश विकला	स्व पूर्ण ' '' '''	मित्र तीनपाद ' '' '''	सम दोपाद ' '' '''	शत्रु एकपाद ' '' '''
३१	०।१८।३६	०।१३।५७	०।९।१८	०।४।३९	४६	०।२७।३६	०।२०।४२	०।१३।४८	०।६।५४
३२	०।१९।१२	०।१४।२४	०।९।३६	०।४।४८	४७	०।२८।१२	०।२१।९	०।१४।६	०।७।३
३३	०।१९।४८	०।१४।५१	०।९।५४	०।४।५७	४८	०।२८।४८	०।२१।३६	०।१४।२४	०।७।१२
३४	०।२०।२४	०।१५।१८	०।१०।१२	०।५।६	४९	०।२९।२४	०।२२।३	०।१४।४२	०।७।२१
३५	०।२१।०	०।१५।४५	०।१०।३०	०।५।१५	५०	०।३०।०	०।२२।३०	०।१५।०	०।७।३०
३६	०।२१।३६	०।१६।१२	०।१०।४८	०।५।२४	५१	०।३०।३६	०।२२।५७	०।१५।१८	०।७।३९
३७	०।२२।१२	०।१६।३९	०।११।६	०।५।३३	५२	०।३१।१२	०।२३।२४	०।१५।३६	०।७।४८
३८	०।२२।४८	०।१७।६	०।११।२४	०।५।४२	५३	०।३१।४८	०।२३।५१	०।१५।५४	०।७।५७
३९	०।२३।२४	०।१७।३३	०।११।४२	०।५।५१	५४	०।३२।२४	०।२४।१८	०।१६।१२	०।८।६
४०	०।२४।०	०।१८।०	०।१२।०	०।६।०	५५	०।३३।०	०।२४।४५	०।१६।३०	०।८।१५
४१	०।२४।३६	०।१८।२७	०।१२।१८	०।६।९	५६	०।३३।३६	०।२५।१२	०।१६।४८	०।८।२४
४२	०।२५।१२	०।१८।५४	०।१२।३६	०।६।१८	५७	०।३४।१२	०।२५।३९	०।१७।६	०।८।३३
४३	०।२५।४८	०।१९।२१	०।१२।५४	०।६।२७	५८	०।३४।४८	०।२६।६	०।१७।२४	०।८।४२
४४	०।२६।२४	०।१९।४८	०।१३।१२	०।६।३६	५९	०।३५।२४	०।२६।३३	०।१७।४२	०।८।५१
४५	०।२७।०	०।२०।१५	०।१३।३०	०।६।४५	६०	०।३६।०	०।२७।०	०।१८।०	०।९। *

यह नवांशबलसारिणी कला और विकला की समाप्ति की है। प्रत्येक नवांश २०० कला का होता है। उसका मध्यभाग १०० कलाओं पर हुआ करता है। इसलिये नवांश के आरंभ से १०० कलाओं से न्यून यदि नवांश की कला और विकला शेष रहें तो सारिणी में से उन कला और विकलाओं का जो फल प्राप्त हो, वही उस ग्रह का नवांशबल होगा। यदि सौ १०० कलाओं से अधिक नवांश की कला-विकला हों तो उनको दो सौ कलाओं में से घटा कर जो कला और विकला शेष रहें, उनका बल इस सारिणी के द्वारा निश्चित करना चाहिये।

उदाहरण :—

जैसे इष्टकालिक राश्यादि स्पष्ट सूर्य ४।७।२५।५२ है। इसमें से गत नवांश–४।६।४०।० घटाया तो ०।४५।५२ यह मिथुन नवांश का ४५ कला और ५२ विकला शेष रहा। सूर्य का बुध सम है; इस लिये सम नवांश का बल सूर्य को प्राप्त हुआ। वह बल नवांश-बलसारिणी के द्वारा इस प्रकार है :—

	कला	विकला	प्र० वि०
कला ४५ का फल	१३	३०	
विकला ५२ का फल	०	१५	३६
योग	१३	४५	३६

यह सूर्य का उस समय नवांशबल हुआ, जो कलादि है।

उच्चबल-साधन का प्रकार

इष्टकालिक राश्यादि स्पष्ट ग्रह को उस ग्रह के परम नीच राश्यादि में से अथवा राश्यादि स्पष्ट ग्रह में से उस ग्रह के परम नीच राश्यादि को घटाने पर जो शेष राश्यादि बचे. उसके अंश, कला और विकला बना लें। फिर शेष अंशादि में ६ का भाग देने

से जो कलादि लब्धि आवे, उसे ३० कला में जोड़ देने से उस ग्रह का उच्चबल सिद्ध होता है।

उदाहरण :—

जैसे सूर्य का परमनीचराश्यादि ६। १०। ०। ० हैं तो इसमें से इष्टकालिक स्पष्ट सूर्य राश्यादि ४। ७। २५। ५२ को

घटाया तो यह २। २। ३४। ८

राश्यादि शेष रहा। २ राशि के ६० अंश हुए। इन में २ अंश २४ कला और ८ विकला को जोड़ा तो ६२ अंश ३४ कला और ८ विकला हुआ। इसमें ६ का भाग दिया तो १० कला २५ विकला और ४१।२० प्रतिविकला लब्धि हुई। इसको भी ३० कला में जोड़ दिया तो उस इष्टकालिक सूर्य का ४० कला २८ विकला और ४१।२० प्रतिविकलात्मक उच्चबल हुआ।

वक्र तथा उदयबल का साधन

वक्रबल तथा उदयबल के साधन में दिवसगणना वार अथवा अंग्रेजी तारीख से ही ठीक हुआ करती है। कभी कभी पञ्चाङ्गों में लिखे हुए वक्र-मार्ग और उदयास्तकाल में दो तीन दिन तक का अन्तर भी होता देखा गया है; इसलिये आरंभ-समाप्ति की अवधि को निश्चित करते समय सतर्कता से काम लेना चाहिये। अन्यथा फल कुछ का कुछ हो सकता है!

वक्रबल का उदाहरण

जैसे—ता० १२ मई १९५१ के उदाहरण में शनि वक्री है। यह शनि ता० १२।१।५१ को वक्री हुआ और ता० २९।५।५१ को मार्गी हुआ था, तो इसका वक्रकाल १३८ दिन हुआ। मध्यकाल ६९ दिन हुआ। ता० १२ मई को १२१ दिन वक्रकाल के होते हैं

इनको सम्पूर्णकाल १३८ दिन में से घटाने पर १७ दिन वक्रकाल के शेष रहते हैं। अब यहाँ पर त्रैराशिक से—यदि ६९ दिन में पूर्ण (६०) वक्रबल होता है, तो १७ दिन में क्या होगा? तो उत्तर मिला कि ०।१४।४७ यह ता० १२ मई को शनिका वक्र-बल हुआ।

उदयबल का उदाहरण

जैसे—चन्द्र का उदयबल लाना है, तो यह चन्द्रमा शुक्लपक्ष की द्वितीया से पूर्णिमा तक १४ दिन में पूर्ण बल पाता है। पूर्णिमा के बाद क्रम से उसका उदयबल घटता हुआ कृष्णपक्ष की १४ को०शून्य हो जाता है। ता०१२ को शुक्लपक्ष की ६ तिथि है, तो शुक्ल द्वितीया से ५ दिन हुए। पूर्णिमा तक चन्द्र के उदयकाल का मध्यकाल होता है। अब यहाँ त्रैराशिक से—यदि १४ दिन में पूर्ण (६०) उदयबल मिलता है, तो ५ दिन में क्या? उत्तर आया ०।२१।२६ यह ता० १२ मई को चन्द्र का उदयबल हुआ।

वेधसंबंधी विशेष विचार

सभी ग्रह सर्वतोभद्रचक्र में किसी न किसी नक्षत्र पर स्थित हो कर, अपनी अपनी वाम, संमुख तथा दक्षिण दिशा के वर्णादिकों पर वेध किया करते हैं। कौनसा ग्रह कैसी स्थिति में किधर वेध कर सकता है; इसके लिये उस ग्रह की स्वाचारिक गति को आधारभूत माना गया है। यद्यपि गणितशास्त्र के सिद्धान्तानुसार ग्रहों की आठ प्रकार की गति हुआ करती है, तथापि इस चक्र में ग्रहों का स्वाधिष्ठित नक्षत्रस्थान से वाम-संमुख-दक्षिण; तीन ओर वेध होता है; इस कारण ग्रन्थकार ने वक्र शीघ्र तथा मध्य; इन तीन गतियों को ही वेध के उपयुक्त माना है। उनमें से ग्रहों की वक्रगति के तीन भेद हैं—एक वक्र दूसरा अतिवक्र और तीसरा

कुटिल। ग्रन्थकार के "अतिवक्र और कुटिल गतिवाला ग्रह भी वक्री ही होता है।"—इस नियम से राहु-केतु सदावक्री होने से और भौमादिक पाँच ग्रह जब वक्र, अतिवक्र तथा कुटिल गति के होते हैं, तब दक्षिणवेध करते हैं। और सूर्य-चन्द्र कभी वक्रगति के होते ही नहीं; इसलिये इनका दक्षिणवेध भी कभी नहीं होता। ग्रहों की शीघ्रगति के भी दो भेद हैं—एक शीघ्र और दूसरा अतिशीघ्र। सूर्य-चन्द्र सदाशीघ्री होने के कारण मध्यमगति से अधिक गति के होने पर वामवेध करते हैं। किन्तु भौमादि पाँच ग्रह अपनी मध्यम गति से अधिक गति के होने पर भी जब वे अतिशीघ्र गति के होते हैं, तभी वामवेध करते हैं—शीघ्रगति में नहीं। और राहु-केतु कभी मार्गगति के होते ही नहीं; इसलियें इनका वामवेध भी कभी नहीं होता। ग्रहों की मध्यमगति के भी तीन भेद हैं—एक सम दूसरा मन्द और तीसरा अतिमन्द। सूर्य-चन्द्र अपनी मध्यमगति से न्यून होते हुए भी जब उनकी मध्यमगति के तुल्य स्फुटगति भी होती है, तब और जब मन्दगति के होते हैं, तब भी संमुखवेध करते हैं—अतिमन्दगति में नहीं। राहु-केतु सदावक्री और सदैव एकगति होने के कारण कभी भी संमुखवेध नहीं करते। यह नरपति आचार्य का सर्वतोभद्रचक्र से भिन्न स्थल में ग्रहों की वेधदिशा को निश्चित करने का सिद्धान्त है।

ग्रन्थकर्ता ने सर्वतोभद्रचक्र में सूर्य-चन्द्र तथा राहु-केतु का जो सर्वदा त्रिविध (वाम-संमुख-दक्षिण) वेध माना है, वह यदि किसी का शुभाशुभफल सर्वतोभद्रचक्र की रीति से ही कहना हो, तभी चरितार्थ होता है। प्रस्तुत अर्घकाण्ड में सर्वतोभद्रचक्र की रीति से फलनिरूपण नहीं किया जाता; इसलिये ग्रन्थकार के पूर्वोक्त नियमसूत्रों के आधार पर ही वेधविचार फलप्रद होता है।

सर्वतोभद्रचक्र में कोणगत नक्षत्रों के चतुर्थ तथा प्रथम पाद पर स्थित ग्रहों के कोणस्थ स्वर तथा पूर्णातिथि के वेध विषय में विविध मतों का दिग्दर्शन तो किया जा चुका है। वहाँ भी ग्रन्थकार के कथनानुसार कोणगतनक्षत्र के चतुर्थ तथा प्रथम पादस्थ ग्रह की स्वाभाविक वक्रादि गति का उपयोग नहीं होता। कारण कि, ग्रन्थकर्ता नरपति आचार्य के मत में कोणवेध गतिनिरपेक्ष है और अन्यवेध गतिसापेक्ष हैं। किन्तु यह भी जब सर्वतोभद्रचक्र की रीति से यदि शुभाशुभ फल निरूपण करना हो, तभी चरितार्थ होता है। अतिरिक्त स्थल में तो ग्रहों की वक्रादि गति के आधार पर ही कोणगत वेध फलप्रद होता है। हां, प्रस्तुत अर्घकाण्ड में यह विशेषता पाई जाती है कि, देशादि का स्वामी ग्रह चाहे जिस गति का क्यों न हो, वह कोणस्थ नक्षत्र के चतुर्थ एवं प्रथम पाद पर स्थित होते हुए भी अपनी स्वाभाविक गति से जिधर वेध कर सकता है, उधर तो वेध करता ही है; किन्तु अपने स्वामित्वरूप विशेषाधिकार से कोणवेध भी करता है। साथ ही जब स्वामी के अतिरिक्त दूसरा कोई ग्रह कोणवेध करता है, तब उसके अन्य वेध नहीं होते। क्योंकि, उसे उसी नक्षत्र के अन्य चरणों में स्थित हो कर अन्य वेधों के लिये अवसर मिल जाता है।

राहु-केतु को छोड़ कर अन्य सभी (सूर्यादि) ग्रहों की गति घटती बढ़ती रहती है। उनकी गति में जो ह्रास-वृद्धि हुआ करती है, वह भी स्थिर नहीं होती। अतएव फलनिर्देश के लिये हमारे पूर्वाचार्यों ने सूर्यादि ग्रहों की मध्यमगति को स्थिर मान कर, उससे अधिक गति वाले ग्रह को शीघ्रगति तथा अतिशीघ्रगति माना है। मध्यमगति के तुल्य उस ग्रह की जब स्फुट गति भी हो, तब उसे समगति कहा है। और मध्यमगति से न्यूनगतिवाले ग्रह

को मन्दगति तथा अतिमन्दगति बतलाया है। परन्तु यह कहीं भी स्पष्टरूप से नहीं बतलाया कि, मध्यमगति से वह ग्रह कितनी अधिक वा न्यून गति का होगा, तब वह शीघ्रगति तथा अतिशीघ्रगति एवं मन्दगति तथा अतिमन्दगति माना जायगा। ऐसी स्थिति में यह उचित जान पड़ता है कि, प्रस्तुत प्रकरण में त्रिविध वेध, त्रिविध गति, त्रिविध देशादि वेध्य, त्रिविध (समर्घ-महार्घ-साम्य) मूल्य आदि सभी त्रिविध हैं, तब ऐसा क्यों न मान लिया जाय कि, ग्रहों की मध्यमगति से उनकी परमशीघ्र गति का जितना अन्तर हो, उसे तीन भागों में विभक्त करके, परमशीघ्रगति के समीपवाला तृतीय भाग ही अतिशीघ्रगति का होता है—उस भाग की गति से भ्रमण करनेवाला ग्रह अतिशीघ्री होने से वामवेध करता है। मध्यमगति से आगे के प्रथम भाग में वह ग्रह समगति हो कर संमुखवेध तो कर सकता है, परन्तु वामवेध नहीं। और द्वितीयभाग में वह ग्रह शीघ्रगति होते हुए भी वामवेध करने का अधिकारी नहीं होता। इसी तरह ग्रहों की मध्यमगति से परममन्दगति का जितना अन्तर हो, उसके भी तीन भाग करके परममन्दगति के निकट का प्रथम भाग अतिमन्दगति का होता है। उस गति से भ्रमण करनेवाला ग्रह संमुखवेध नहीं कर सकता। शेष दोनों भागों में द्वितीय भाग मन्दगति का और तीसरा भाग समगति का होता है। इन दोनों भागों की गति से भ्रमण करनेवाला ग्रह संमुखवेध करता है।

यहाँ पर यह भी स्मरण रखने के योग्य है कि, सूर्य-चन्द्र सदाशीघ्री होने के कारण, अपनी मध्यमगति से अधिकगति के होते ही सर्वदा वामवेध किया करते हैं; यह उनका स्वभाव है। क्योंकि, नरपति आचार्य ने इन दोनों को स्पष्ट शब्दों में सदाशीघ्री कहा है।

बलसंबंधी विशेष विचार

सूर्य का उदयबल सर्वदा पूर्ण ही रहता है—न्यूनाधिक नहीं। क्योंकि, वह सदोदित ग्रह है।

चन्द्रमा केवल अमावास्या तथा प्रतिपदा को अस्त रहता है। शेष २८ दिन उदित रहता है। चन्द्रमा का उदयबल अनुपातसिद्ध हुआ करता है।

राहु-केतु का उदयबल सर्वदा शून्य ही रहता है। क्योंकि, ये दोनों कभी उदित नहीं होते।

सूर्य-चन्द्र का वक्रबल सर्वदा शून्य ही रहता है। क्योंकि, ये दोनों कभी वक्री नहीं होते।

राहु-केतु का वक्रबल सर्वदा पूर्ण ही रहता है। कारण कि, ये दोनों सदावक्री हैं।

वेधविषयक आवश्यक संकेत

सर्वतोभद्रचक्र में वर्णादिकों पर वेध—दिशा की पहिचान के लिये निम्नलिखित संकेतों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

वामवेध का संकेत		L
दक्षिणवेध का	"	R
संमुखवेध का	"	8
कोणवेध का	"	(१) (४)
स्थितिजवेधका	"	ठ
दृष्टिहीनवेधका	"	०
वेधहीनग्रह का	"	×
अंश का	"	.
कला का	"	'
विकला का	"	"
प्रतिविकला का	"	'''

शुभ ग्रह की विंशोपक-सारिणी

	१ वेध्य	२ वेध्य	३ वेध्य	४ वेध्य	५ वेध्य
पूर्ण वेध पूर्ण दृष्टि	१।०।०	२।०।०	३।०।०	४।०।०	५।०.०
पूर्ण वेध त्रिपाददृष्टि	०।४५।०	१।३०।०	२।१५।०	३।०।०	३।४५।०
पूर्ण वेध द्विपाददृष्टि	०।३०।०	१। ०।०	१।३०।०	२।०।०	२।३०।०
पूर्ण वेध एकपाददृष्टि	०।१५।०	०।३०।०	०।४५।०	१।०।०	१।१५।०
त्रिपाद वेध पूर्ण दृष्टि	०।४५।०	१।३०।०	२।१५।०	३।०।०	३।४५।०
त्रिपाद वेध त्रिपाद दृष्टि	०।२३।४५	१।७।३०	१।४०।१५	२।१५।०	२।४८।४५
त्रिपाद वेध द्विपाद दृष्टि	०।२२।३०	०।४५।०	१।७।३०	१।३०	१।५२।३०
त्रिपाद वेध एकपाददृष्टि	०।११।१५	०।२२।३०	०।३३।४५	०।४५।०	०।५६।१५
द्विपाद वेध पूर्ण दृष्टि	०।३०।०	१।०।०	१।३०।०	२।०।०	२।३०।०
द्विपाद वेध त्रिपाददृष्टि	०।२२।३०	०।४५।०	१।७।३०	१।३०।०	१।५२।३०
द्विपाद वेध द्विपाद गृष्टि	०।१५।०	०।३०।०	०।४५।०	१।०।०	१।१५।०

	१ वेध्य	२ वेध्य	३ वेध्य	४ वेध्य	५ वेध्य
द्विपाद वेध एकपाद दृष्टि	०।७।३०	०।१५।०	०।२२।३०	०।३०।०	०।३७।३०
एकपाद वेध पूर्ण दृष्टि	०।१५।०	०।३०।०	०।४५।०	१।०।०	१।१५।०
एकपाद वेध त्रिपाद दृष्टि	०।११।१५	०।२२।३०	०।३३।४५	०।४५।०	०।५६।१५
एकपाद वेध द्विपाद दृष्टि	०।७।३०	०।१५।०	०।२२।३०	०।३०।०	०।३७।३०
एकपाद वेध एकपाददृष्टि	०।३।४५	०।७।३०	०।११।१५	०।१५।०	०।१८।४५

क्रूरग्रह की विंशोपक-सारिणी

पूर्णवेध पूर्ण दृष्टि	०।४८।०	१।३६।०	२।२४।०	३।१२।०	४।०।०
पूर्णवेध त्रिपाददृष्टि	०।३६।०	१।१२।०	१।४८।०	२।२४।०	३।०।०
पूर्णवेध द्विपाददृष्टि	०।२४।०	०।४८।०	१।१२।०	१।३६।०	२।०।०
पूर्णवेध एकपाद दृष्टि	०।१२।०	०।२४।	०।३६।०	०।४८।०	१।०।०
त्रिपाद वेध पूर्णदृष्टि	०।३६।०	१।१२।०	१।४८।०	२।२४।०	३।०।०
त्रिपाद वेध त्रिपाद दृष्टि	०।२७।०	०।५४।०	१।२१।०	१।४८।०	२।१५।०

	१ वेध्य	२ वेध्य	३ वेध्य	४ वेध्य	५ वेध्य
त्रिपाद वेध द्विपाद दृष्टि	०।१८।०	०।३६।०	०।५४।०	१।१२।०	१।३०।०
त्रिपाद वेध एकपाद दृष्टि	०। ६।०	०।१८।०	०।२७।०	०।३६।०	०।४५।०
द्विपाद वेध पूर्ण दृष्टि	०।२४।०	०।४८।०	१।१२।०	१।३६।०	२। ०।०
द्विपाद वेध त्रिपाद दृष्टि	०।१८।०	०।३६।०	०।५४।०	१।१२।०	१।३०।०
द्विपाद वेध द्विपाद दृष्टि	०।१२।०	०।२४।०	०।३६।०	०।४८।०	१। ०।०
द्विपाद वेध एकपाद दृष्टि	०। ६।०	०।१२।०	०।१८।०	०।२४।०	०।३[illegible]।०
एकपाद वेध पूर्ण दृष्टि	०।१२।०	०।२४।०	०।३६।०	०।४८।०	१। ०।०
एकपाद वेध त्रिपाद दृष्टि	०। ६।०	०।१८।०	०।२७।०	०।३६।०	०।४५।०
एकपाद वेध द्विपाद दृष्टि	०। ६।०	०।१२।०	०।१८।०	०।२४।०	०।३०।०
एकपाद वेध एकपाद दृष्टि	०। ३।०	०। ६।०	०। ६।०	०।१२।०	०।१५।०

तेजी-मंदी जानने की पद्धति का स्वरुप

आधुनिक व्यापारक्रम को देखते हुए निर्णयकर्ता को चाहिये कि, वह सबसे पहिले वर्ष, मास अथवा दिन के फलविचार में एक तो आरम्भकाल की अवधि और दूसरी समाप्तिकाल की अवधि; इस प्रकार दो अवधियों को निश्चित करे। प्रथम वर्ष, मास अथवा दिन के बन्द बाजार का जो समय हो, वह आरम्भ की और द्वितीय वर्ष, मास अथवा दिन के बन्द बाजार का जो समय हो, वह समाप्ति अथवा भावी शुभाशुभ फल की अवधि होती है। क्योंकि, प्रायः सभी बाजारों के बन्द होने का कोई निश्चित समय नहीं होता। फिर उन दोनों अवधियों के इष्टकालों पर सूर्यादि ग्रहों का स्पष्ट करके,उनके नीचे प्रत्येक ग्रह की कला—विकला सहित गति को लिखे। बाद में 'वेधविषयक विशेष विचार' के अनुसार ग्रहों का वेधोपयुक्त वक्र-शीघ्र-समत्व निश्चित करके, प्रत्येक ग्रह के नीचे जो ग्रह जैसा हो, वैसा (वक्री, शीघ्री तथा समचारी) लिखे, जिससे यह जाना जा सके कि, कौनसा ग्रह सर्वतोभद्रचक्र में किधर (दाहिने, बाँयें या सामने की तरफ) वेध कर सकेगा। इसके बाद प्रत्येक ग्रह के नीचे, वह ग्रह जिस नक्षत्र के जिस चरण में हो, वह नक्षत्र और उसकी चरणसंख्या भी लिखे। जिससे कौनसा ग्रह कोणवेध अथवा नवांशवेध या स्थितिजवेध कर रहा है; यह जाना जा सके। फिर स्वामिनिर्णयार्थ

यह भी निश्चित करके लिखे कि, कौनसा ग्रह स्वमित्रादि किस क्षेत्र में है, और किस नवांश में विद्यमान है, उदित है या अस्त, वक्री है या मार्गी, उच्चस्थ है या नीचस्थ। बाद में प्रत्येक ग्रह का १ क्षेत्रबल २ नवांशबल ३ उदयबल ४ वक्रबल और ५ उच्चबल पूर्वोक्त रीति से निश्चित करके, पांचों बलों का योग प्रत्येक ग्रह के नीचे लिखे। फिर देश, काल तथा पण्य के स्वामियों में से जो उस समय अधिक बली हो, उसे देशादि का स्वामी माने। बाद में देश, काल तथा पण्य; इन तीनों के पृथक् पृथक् वर्णादि-पञ्चक निर्माण करे। पुनः यह देखे कि, सर्वतोभद्र चक्र में उन देश-काल-पण्य के वर्णादिपञ्चकों पर किन किन ग्रहों का कितने पाद वेध होता है और उन वेधक ग्रहों की देशादि के वर्णादिपञ्चकों की राशिपर मेषादि राशिमण्डल में कितने पाद दृष्टि है। उन वेध और दृष्टि के पादों के अनुमान से सौम्य तथा क्रूर ग्रहों के विंशोपक सारिणी के द्वारा निर्माण करके जुदा जुदा उनका योग करे। उनमें से जिधर के विंशोपक अधिक हों, उनमें से जिधर के न्यून हों, उनको घटा कर शेष विंशोपक दोनों अवधि-कालों पर पृथक् पृथक् लिखे। फिर इन दोनों अवधियों के शेष विंशोपकों में से भी जिधर के अधिक हों, उनमें से जिधर के न्यून हों, उनको घटा देने पर जो शेष बचेगा, वह भावी फल का उत्पादक होने से 'फल-विंशोपक' होगा। जहां पर जिस वस्तु की खरीद-बिक्री का जैसा व्यवहार चलता हो, जो कि तोल के स्वरूप में या मूल्य के स्वरूप में घटता बढ़ता रहता हो, वह उस दिन के उस समय का पूर्ण विंशोपक—बीस के बराबर होता है। फिर त्रैराशिक की रीति से यह उत्तर लावे कि, यदि बीस में यह पूर्ण भाव या मूल्य है (जो आपको मालूम है) तो पूर्वोक्त पद्धति के द्वारा निश्चित किये हुए प्रथम अवधि के फलविंशोपक में क्या? जो उत्तर आवे, उसे

'अ' संज्ञक समझें। यह सर्वदा एक के बराबर रहता है। पुनः त्रैराशिक से उत्तर लावे कि, यदि एक में यह उपर्युक्त 'अ' है, तो दोनों अवधियों के फलविंशोपकों के अन्तर में क्या? जो उत्तर आवेगा, वह आप के इष्ट दिन की इष्ट अवधि के भाव या मूल्य का अन्तर होगा। वह अन्तर यदि सौम्य—शेष के आधार पर ऋण हो, तो वर्तमान भाव या मूल्य में घटा दे और क्रूर—शेष के आधार पर यदि वह अन्तर धन हो, तो वर्तमान भाव या मूल्य में जोड़ दे। ऐसा करने से जो भाव या मूल्य बनेगा, वही इष्ट दिन की इष्ट अवधि का भाव या मूल्य होगा।

अथवा प्रथम तथा द्वितीय अवधि के फलविंशोपक तैयार करलें। फिर वर्तमान मूल्य का (जो प्रत्येक समय में भिन्न भिन्न हुआ करता है) विंशांश निर्माण कर लें। बाद में त्रैराशिक से फल लावें कि, यदि प्रथम अवधि के फलविंशोपकों में यह मूल्य का विंशोपक (विंशांश) था तो द्वितीय अवधि के न्यून वा अधिक फलविंशोपकों में क्या? जो उत्तर आवे, उतनी ही घटाबढ़ी होकर इष्ट दिन (द्वितीय अवधि) का वर्तमान मूल्य होगा।

उदाहरण

जैसे :—किसी ने पूछा कि, बंबई में ता० १२।५।५१ शनिवार को मध्याह्नोत्तर ३ बजे (स्टैंडर्ड टाइम) चांदी के वैशाख वायदा का २०४।) यह वर्तमान मूल्य (बंद बाजार का भाव) है, तो तारीख १४।५।५१ सोमवार को मध्याह्नोत्तर ३ बजे (स्टैंडर्ड टाइम) चांदी के वैशाख वायदा का क्या मूल्य होगा? तो उत्तर इस प्रकार होगा कि:—

स्थान बंबई । ता० १२ । ५ । ५१ शनिवार । मध्याह्नोत्तर ३ बजे (स्टैंडर्ड टाइम) चांदी का वर्तमान मूल्य २०४1) वैशाख वायदा—

स्पष्ट ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
	०	३	१	०	११	२	५	१०	४
	२७	७	०	५	११	८	२	२२	२२
	४१	११	१४	४६	१६	२१	३६	३६	३६
	४०	६	४५	३४	५६	६	२६	३४	३४
गति कला	५७	७१७	४२	२०	१२	६८	२	३	३
गति विकला	५८	३८	४५	०	०	०	०	११	११
वक्र, शीघ्र, सम	सम	×	शीघ्र	सम	शीघ्र	×	वक्री	वक्री	वक्री
स्वामित्रादि क्षेत्र	मित्र	स्व	सम	सम	स्व	मित्र	मित्र	शत्रु	शत्रु
स्वामित्रादिनवांश	मित्र	मित्र	सम	मित्र	शत्रु	सम	स्व	शत्रु	शत्रु
उदयास्त	उदित	उदित	अस्त	उदित	उदित	उदित	उदित	अस्त	अस्त
उच्च-नीच	उच्च	×	×	×	×	×	×	×	×
नक्षत्र पाद	कृ १	पुष्य २	कृ २	अश्विनी२	उ.भा.३	आर्द्रा १	उ.फा.२	पू.भा. १	पू.फा.२

स्वामिनिर्णयार्थ ग्रहों का क्षेत्रादिबल

ग्रह	१ क्षेत्रबल	२ नवांशबल	३ उदयबल	४ वक्रबल	उच्चबल	योग
सूर्य	०।६।५५	०।२७।४५	१।०।०	०।०।०	०।५७।३	२।३१।४३
चन्द्र	०।२८।४५	०।१४।१	०।२१।२६	०।०।०	०।४६।१८	१।५३।३०
मङ्गल	०।०।२६	०।४।२५	०।०।०	०।०।०	०।४४।३७	०।४६।३१
बुध	०।११।३३	०।२४।३	०।१०।३०	०।०।०	०।३३।२८	१।१६।३४
गुरु	०।४५।८	०।११।३३	०।१२।५४	०।०।०	०।४१।३	१।५०।३८
शुक्र	०।२५।३	०।२६।२६	०।४८।५८	०।०।०	०।४८।६	२।२१।४६
शनि	०।७।४६	०।२६।८	०।४१।४५	०।१४।४७	०।५२।६	२।२२।३५
राहु	०।७।२०	०।६।४	०।०।०	१।०।०	०।४०।२७	१।५३।५१
केतु	०।७।२०	०।६।४	०।०।०	१।०।०	०।४०।२७	१।५३।५१

	वर्ण	नक्षत्र	राशि	स्वर	तिथि
बंबई स्थान का वर्णादिपञ्चक	ब	रोहिणी	वृष	ओ	पूर्णा
स्वामी चन्द्र	गु L		०मं I ०बु8		
कालका "	ड	पुष्य	कर्क	अ	नंदा६शु.प.
स्वामी चन्द्र	०शR		बु8		मं L
पण्य चांदी का "	च	रेवती	मीन	ओ	पूर्णा
स्वामी शनि	०गु L				

विवेचन :—

ऊपर लिखे हुए देश-काल-पण्य के वर्णादिकों पर वही वेध लिया गया है, जो पूर्वोक्त 'वेध-संबंधी विशेष विचार' में बतलाए हुए प्रकार से जो ग्रह अपनी गति के अनुसार सर्वतोभद्रचक्र में जिधर वेध कर सकता है। जिन ग्रहों का वेध तो हो रहा है, परन्तु उनकी वेध्य राशि पर दृष्टि नहीं है; उसके लिये उन ग्रहों के पहिले ० ऐसा संकेत चिह्न दे दिया है, जिससे यह विदित हो जाय कि, यह वेध दृष्टिहीन है—इस वेध का फल कुछ भी न होगा। आगे के उदाहरणों में भी इसी तरह वेध लिया गया है।

आज के इस उदाहरण में देश, काल तथा पण्य के वर्णादिपञ्चकों पर वेध करने वाले ग्रहों में दो सौम्य ग्रह हैं, और एक क्रूर ग्रह। पूर्वोक्त विंशोपक-सारिणी के द्वारा इन ग्रहों के विंशोपक इस प्रकार होते हैं:—

सौम्य ग्रह		क्रूर ग्रह	
ब + गुL	०। ७।३०	नन्दा + मंL	०।६।०
कर्क + बु 8	०।३३।४५	क्रूर योगः	०।६।०
शुभ योगः	०।४१।१५		
—क्रूर योगः	०। ६। ०		
शेष	०।३२।१५	शुभ विंशोपक	

यह ता० १२।५।५१ शनिवार के शेष फलविंशोपक निश्चित हुए। उस समय बंबई के चांदी बाजार का वैशाखवायदा का भाव २०४।) सायंकाल के ३ बजे स्टैंडर्ड टाइम पर था।

स्थान बंबई। ता० १४।५।५१ सोमवार। स्टैंडर्ड टाइम मध्याह्नोत्तर ३ बजे। चांदी का वर्तमान मूल्य २०१।ﾞ) वैशाख वायदा।

स्पष्ट ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
	०	४	१	०	११	२	५	१०	४
	२६	१	१	६	११	१०	२	२२	२२
	३७	३१	४०	३१	४१	३८	३३	३३	३३
	२६	१६	४५	३८	५६	३	२६	३४	३४
गतिलला	५७	७४२	४२	२५	१२	६६	२	३	३
गति विकला	५४	२६	४०	०	०	०	०	११	११
वक्र, शीघ्र, सम	सम	सम	शीघ्र	सम	शीघ्र	×	वक्री	वक्री	वक्री
नक्षत्र पाद	कृ १	मघा १	कृ २	अश्विनी २	उ. भा. ३	आर्द्रा २	उ. फा २	पू. भा. १	पू. फा. ३
स्वमित्रादि क्षेत्र	मित्र	मित्र	सम	सम	स्व	मित्र	मित्र	शत्रु	शत्रु
स्वमित्रादि नवांश	मित्र	सम	सम	मित्र	शत्रु	मित्र	स्व	शत्रु	शत्रु
उदयास्त	उदित	उदित	अस्त	उदित	उदित	उदित	उदित	अस्त	अस्त
वक्री, मार्गी	मा.	मा.	मा.	मा.	मा.	मा.	वक्री	वक्री	वक्री

	१ क्षेत्रबल	२ नवांशबल	३ उदयबल	४ वक्रबल	५ उच्चबल	योग
सूर्य	०। १। ६	०।१०। ८	१। ०। ०	०। ०। ०	०।५६।४४	२। ८।१
चन्द्र	०। ४।३४	०।२७।२४	०।३०। ०	०। ०। ०	०।४५।१५	१।४७।१३
मङ्गल	०। ३।२१	०।२६।४६	०। ०। ०	०। ०। ०	०।४४।२३	१।१७ ३०
बुध	०।१३। ३	०। ३।४६	०।२३।३०	०। ०। ०	०।३३।३५	१। ३।५४
गुरु	०।४६।४८	०।१४।४२	०।१३।३३	०। ०। ०	०।४१। ७	१।५६।१०
शुक्र	०।२१।५४	०।१७। ७	०।४८। ०	०। ०। ०	०।४७।४४	२।१४।४५
शनि	०। ७।४१	०।२७।५६	०।४१। ३	०।१३। ३	०।५२। ६	२।२१।४६
राहु	०। ७।२६	०। ६।५८	०। ०। ०	१। ०। ०	०।४०।२६	१।५४।५०
केतु	०। ७।२६	०। ६।५८	०। ०। ०	१। ०। ०	०।४०।२६	१।५४।५०

	वर्णादि पञ्चक	वर्ण	नक्षत्र	राशि	स्वर	तिथि
बंबई स्थान का स्वामी चन्द्र		ब गु L चं 8	रोहिणी	वृष ०बु8	ओ	पूर्णा चं (१)
काल का स्वामीचन्द्र	”	त	विशाखा	तुला	उ चं 8	जया ८ शुक्ल पक्ष
पण्य का स्वामी शनि	”	च ०गुL	रेवती	मीन	ओ	पूर्णा चं (१)

विवेचनः—

वेधकर्ता - दोनों ग्रह सौम्य हैं। पूर्वोक्त विंशोपकसारिणी के द्वारा दोनों ग्रहों के विंशोपक इस प्रकार होते हैं:—

सौम्यग्रह

ब + गुL	०। ७।३०
ब + चं 8	०।१५। ०
स्थानीय पूर्णा + चं (१)	०।१५। ०
उ + चं 8	०।१५। ०
पण्य-पूर्णा + चं (१)	०।११।१५
शुभ योग	१। ३।४५ शेष शुभविंशोपक

अब यहां पर पूर्वोक्त पद्धति क्रम से इस प्रकार फल निकाला जायगा कि:—

द्वितीय अवधि ता० १४। ५। ५१ सोमवार के शेष शुभ विंशोपक	१। ३। ४५
प्रथम अवधि ता० १२। ५। ५१ शनिवार के शेष शुभ विंशोपक	०।३२। १५
दोनों का अन्तर	०।३१। ३०

यह अन्तर ही भावी फल का उत्पादक होने से 'फल-विंशोपक' हुआ।

प्रथम दिन के फलविंशोपक ०। ३२। १५ = ४३/८०
द्वितीय दिन के फलविंशोपक ०। ३१। ३० = २१/४०
मूल्य २०४।) = ८१७/४
} इस प्रकार इन तीनों का लघु स्वरूप हुआ।

अब यहां त्रैराशिक की रीति से उत्तर लाया गया कि, यदि २० के बराबर ८१७/४ रुपया मूल्य है, तो प्रथम दिन के ४३/८० फलविंशोपकों के बराबर क्या मूल्य रहेगा, तो ८१७/४ × ४३/८० × १/२० = यह आया हुआ उत्तर 'अ' संज्ञक हुआ। यह एक के बराबर है। पुनः त्रैराशिक की रीति से उत्तर लाया गया कि, इस एक अन्तर में यदि २१/४० है, तो 'अ' संज्ञक में क्या ? तो

रु० आना

अ = (८१७/४ × ४३/८० × १/२०) × २१/४० = ७३७७५१/२५६००० = २ २२५७५१/२५६००० × १६ = ३६१२०१६/२५६००० = १४

∴ २८०१६/२५६००० × १२ = ३३६१९२/२५६००० = १ पाई।

यह उत्तर आया। शुभाधिक शेष होने से प्रथम इष्ट काल के मूल्य २०४।) में २॥।≈) घटा देने से २०१।≈) हुआ। यह ता० १४। ५। ५१ सोमवार का वर्तमान मूल्य हुआ।

परन्तु बोर्ड की तरफ से प्रकाशित दैनिक रिपोर्ट में चांदी के वैशाख वायदा का बन्द बाजार का भाव २०१।–) छपा है—वह स्वल्पान्तर होने से दोषरहित है। प्रायः बाजार के भावों में आना आध आना का अन्तर बहुधा हुआ करता है। इसी क्रम से आगे भी सर्वत्र भाव या मूल्य की घटाबढ़ी समझना चाहिये।

स्थान बंबई। ता० १५। ५। ५१ मंगलवार। स्टैंडर्ड टाइम सायंकाल ५ बजे। चांदी का वर्तमान मूल्य २०३।≈) वैशाख वायदा

स्पष्ट ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
	१	४	१	०	११	२	५	१०	४
	०	१५	२	७	११	११	२	२२	२२
	४०	६	२७	२	५४	५१	३२	३०	३०
	११	४६	२०	३८	०	४६	१५	१८	१८
गति कला	५७	७६२	४२	२६	११	६८	१	३	३
गति विकला	५२	२०	३७	०	०	०	०	११	११
वक्र,शीघ्र,सम	सम	सम	×	सम	शीघ्र	×	वक्री	वक्री	वक्री
स्वमित्रादिक्षेत्र	शत्रु	मित्र	सम	सम	स्व	मित्र	मित्र	शत्रु	शत्रु
स्वमित्रादिनवांश	शत्रु	मित्र	सम	स्व	शत्रु	मित्र	स्व	शत्रु	शत्रु
उदयास्त	उदित	उदित	अस्त	उदित	उदित	उदित	उदित	अस्त	अस्त
नक्षत्र पाद	कृ.२	पू.फा.१	कृ.२	अश्विनी२	उ.भा.३	आर्द्रा२	उ.फा.२	पू.भा.१	पू.फा.३

स्वामिनिर्णयार्थ ग्रहों का चेत्रादिबल

ग्रह	१ चेत्रबल	२ नवांशबल	३ उदयबल	४ वक्रबल	५ उच्चबल	योग
सूर्य	०।४०।०	०।६।२	१।०।०	०।०।०	०।५६।३३	२।४२।३५
चन्द्र	०।४४।२१	०।४०।३५	०।३४।१७	०।०।०	०।४२।५८	२।४२।२१
मङ्गल	०।४।५५	०।१५।४८	०।०।०	०।०।०	०।४४।१५	१।४।५८
बुध	०।१४।५	०।१३।३५	०।१५।०	०।०।०	०।३३।४०	१।१६।२०
गुरु	०।४७।३६	०।१२।५४	०।१३।५२	०।०।०	०।४१।६	१।५५।३१
शुक्र	०।३५।३६	०।३६।४१	०।४७।३२	०।०।०	०।४७।३१	२।५०।२०
शनि	०।७।३७	०।२८।३६	०।४०।४२	०।१२।०	०।५२।५	२।२१।३
राहु	०।७।३०	०।७।२७	०।०।०	१।०।०	०।४०।२५	१।५५।२२
केतु	०।७।३०	७।७।२७	०।०।०	१।०।०	०।४०।२५	१।५५।२२

	वर्ण	नक्षत्र	राशि	स्वर	तिथि
वंबई स्थान का वर्णादिपञ्चक	ब	रोहिणी	वृष	ओ	पूर्णा
स्वामी चन्द्र	गुL		चं8 ०बु8		
काल का ”	थ	उ.भाद्र.	मीन	ए	रिक्ता ६शु.प.
स्वामी चन्द्र	०सू8 द वेध से				
पण्य का ”	च	रेवती	मीन	ओ	पूर्णा
स्वामी शनि	०सू8 ०गुL				

आज का फल इस प्रकार होगा कि :—

ब + गुL ०।७।३०
वृष + चं ०।१५।०

शुभ योग ०।२२।३० शुभ शेष = यह प्रथम दिन के ०।३१।३० शुभ फलविंशोपकों से न्यून हैं, इसलिये अशुभ-संज्ञक हैं। अत एव यहां पर दोनों का अन्तर न होगा। दोनों ही यथास्थित रहेंगे।

यहां त्रैराशिक की पद्धति से प्रथम फलविंशोपक में यदि यह वर्तमान मूल्यविंशांश है, तो द्वितीय फलविंशोपक में क्या ?

$\frac{३१}{४०} \times \frac{३३२२१}{३२०} \times \frac{३}{८} = \frac{२०२९३३}{९०२४००}$ = २ रुपया। यह उत्तर आया।

यह फल क्रूरसंज्ञक शेष का होने के कारण वर्तमान मूल्य में जोड़ देने से [२०१।-) + २) = २०३।-)] यह वर्तमान मूल्य हुआ।

आज भी स्वल्पान्तर होने से दोषरहित है। क्योंकि, रिपोर्ट में आज का भाव २०३।=) छपा है।

स्थान बंबई । ता० १६ । ५ । ५१ बुधवार । स्टैंडर्ड टाइम सायंकाल ५ बजे । चांदी वैशाख वायदा वर्तमान मूल्य २०३।॥-) ।

स्पष्ट ग्रह	सूर्य	चंद्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
	१	४	१	०	११	२	५	१०	४
	१	२८	३	७	१२	१२	२	२२	२२
	३८	६	१०	३५	५	५६	३०	२६	२६
	१	४२	२०	३३	५६	४६	१६	४८	४८
गति कला	५७	७६१	४२	३३	१२	६८	२	३	३
गति विकला	५०	०	३२	०	०	०	०	११	११
वक्र, शीघ्र, सम	×	शीघ्र	×	सम	शीघ्र	×	वक्री	वक्री	वक्री
स्वामित्रादिक्षेत्र	शत्रु	मित्र	सम	सम	स्व	मित्र	मित्र	शत्रु	शत्रु
स्वमित्रादिनवांश	शत्रु	सम	सम	स्व	शत्रु	मित्र	स्व	शत्रु	शत्रु
उदयास्त	उदित	उदित	अस्त	उदित	उदित	उदित	उदित	अस्त	अस्त
उच्च-नीच	उच्च	×	×	×	×	×	×	×	×
नक्षत्रपाद	कृ२	उ.फा.१	कृ२	अश्विनी३	उ.भा.३	आर्द्रा१	ह.फा.२	पू.भा.१	पू.फा.३

स्वामिनिर्णयार्थ ग्रहों का क्षेत्रादिबल

ग्रह	१ क्षेत्रबल	२ नवांशबल	३ उदयबल	४ वक्रबल	५ उच्चबल	योग
सूर्य	०।१।३८	०।१४।४२	१।०।०	०।०।०	०।५६।२४	२।१२।४४
चन्द्र	०।५।३१	०।२६।५५	०।३८।३४	०।०।०	०।४०।४८	१।५१।४८
मङ्गल	०।६।२१	०।२।५४	०।०।०	०।०।०	०।४४।८	०।५३।२३
बुध	०।१५।११	०।३३।२०	०।१६।३०	०।०।०	०।३३।४६	१।३८।४७
गुरु	०।४८।२४	०।११।६	०।१४।१२	०।०।०	०।४१।११	१।५४।५३
शुक्र	०।३८।५८	०।६।५	०।४७।२	०।०।०	०।४७।२०	२।२२।२५
शनि	०।७।३०	०।२६।३४	०।४०।२१	०।११।१८	०।५२।५	२।२०।४८
राहु	०।७।३३	०।७।५६	०।०।०	१।०।०	०।४०।२४	१।५५।५६
केतु	०।७।३३	०।७।५६	०।०।०	१।०।०	०।४०।२४	१।५५।५६

	वर्ण	नक्षत्र	राशि	स्वर	तिथि
बंबई स्थान का वर्णादिपञ्चक स्वामी चन्द्र	ब गुL	रोहिणी	वृष ०बु8	ओ	पूर्णा
कालका स्वामी चन्द्र ,,	द	रेवती	मीन	ओ	पूर्णा१० शु.प.
पृच्छकका स्वामी शनि ,,	च ०गुL	रेवती	मीन	ओ	पूर्णा

ब + गुL ०।७।३० शुभ शेष विंशोपक ।

आज के शेष विंशोपक भी प्रथम दिन के शेष विंशोपकों से न्यून होने के कारण अशुभ-सू[illegible] हुए । त्रैराशिक-पद्धति से :–

$\frac{३}{२} \times \frac{३२५३}{३२०} \times \frac{१}{२} \times \frac{१६}{१} = \frac{१५६१४४}{१२८००}$ = ८ आना । यह उत्तर आया ।

इसे वर्तमान मूल्य में जोड़ा २०३।−)+।।) तो २०३।।।−) यह आज का वर्तमान मूल्य हुआ ।

स्थान बंबई । ता० १७ । ५ । ५१ गुरुवार । स्टैंडर्ड टाइम सायंकाल ४ बजे । चांदी वैशाख वायदा का वर्तमान मूल्य २०३।)

स्पष्ट ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
	१	५	१	०	११	२	५	१०	४
	२	११	३	८	१२	१४	२	२२	२२
	२३	२	५१	११	१७	४	२६	२३	२३
	२४	३६	३३	५२	२६	३	१८	२६	२६
गति कला	५७	८१४	४२	३८	१२	६७	१	३	३
गति विकला	४८	३६	३०	०	०	०	०	११	११

वक्र,शीघ्र,सम	×	शीघ्र	×	सम	शीघ्र	×	वक्री	वक्री	वक्री
स्वमित्रादिक्षेत्र	शत्रु	मित्र	सम	सम	स्व	मित्र	मित्र	शत्रु	शत्रु
स्वमित्रादिनवांश	शत्रु	सम	सम	स्व	शत्रु	मित्र	स्व	शत्रु	शत्रु
उदयास्त	उदित	उदित	अस्त	उदित	उदित	उदित	उदित	अस्त	अस्त
नक्षत्र पाद	कृ २	हस्त. १	कृ.३	अश्विनी३	उ.भा.२	आर्द्रा३	उ.फा.२	पू.भा.१	पू.फा.२.

ग्रह	१ क्षेत्रबल	२ नवांशबल	३ उदयबल	४ वक्रबल	५ उच्चबल	योग
सूर्य	०।२।२३	०।६।५६	१।०।०	०।०।०	०।५६।१४	२।५।४६
चन्द्र	०।२३।८	०।१८।४८	०।४२।५१	०।०।०	०।४३।२६	२।१८।२६
मङ्गल	०।७।४१	०।६।२८	०।०।०	०।०।०	०।४४।१	१।१।१०
बुध	०।१६।२४	०।५५।७	०।१८।०	०।०।०	०।२३।५२	२।३।२३
गुरु	०।४६।८	०।६।२३	०।१४।३१	०।०।०	०।४१।१३	१।५४।१५
शुक्र	०।४२।१२	०।१६।४६	०।४६।३४	०।०।०	०।४७।६	२।३५।४४
शनि	०।७।४८	०।३०।२५	०।४०।०	०।१०।२६	०।५२।५	२।२०।२४
राहु	०।७।३७	०।८।२६	०।०।०	१।०।०	०।४०।२४	१।५६।३०
केतु	०।७।३७	०।८।२६	०।०।०	१।०।०	०।४०।२४	१।५६।३०

	वर्ण	नक्षत्र	राशि	स्वर	तिथि
बंबई स्थान का वर्णादिपञ्चक	ब	रोहिणी	वृष	ओ	पूर्णा
स्वामी चन्द्र	गुL		०बु8		
काल का ”	भ	मूल	धन	अ	नंदा११शु. पक्ष
स्वामी चन्द्र					
पण्य का ”	च	रेवती	मीन	ओ	पूर्णा
स्वामी शनि	०गुL				

ब + गुL ०।७।३० शुभ शेष विंशोपक

प्रथम दिन के शेष विंशोपक भी ०।७।३० ही थे और आज के शेष विंशोपक भी ०।७।३० ही हैं। दोनों में अन्तर यह है कि, प्रथम दिन के अशुभसंज्ञक थे और आज के शुभसंज्ञक। इसलिये जितना फल पहिले दिन मूल्य में बढ़ा था, उतना ही फल आज के मूल्य में घटेगा। वह इस प्रकार होगा कि—२०३॥।–) – ॥) = २०३।–) हुआ। रिपोर्ट में २०३।) छपा है। यहाँ भी स्वल्पान्तर होने से दोषरहित है।

स्थान बंबई। ता० १८।५।५१ शुक्रवार। स्टैंडर्ड टाइम मध्याह्नोत्तर ४ बजे। चांदी वैशाख वायदा का वर्तमान मूल्य २०२॥।)।

स्पष्ट ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
	१	५	१	०	११	२	५	१०	४
	३	२४	४	८	१२	१५	२	२२	२२
	३१	५७	३३	५२	२६	११	२८	२०	२०
	११	२२	३७	४०	२६	५६	१८	२६	२६
गतिकला	५७	८४३	४२	४१	१२	६८	१	३	३
गति विकला	४७	५२	०	०	०	०	०	११	११
वक्र, शीघ्र, सम	×	शीघ्र	×	सम	शीघ्र	×	वक्री	वक्री	वक्री
नक्षत्र पाद	कृ ३	चित्रा १	कृ ३	अश्विनी ३	उ. भा. ३	आर्द्रा ३	उ. फा. २	पू. भा. १	पू. फा. ३
स्वमित्रादि क्षेत्र	शत्रु	मित्र	सम	सम	स्व	मित्र	मित्र	शत्रु	शत्रु
स्वमित्रादि नवांश	शत्रु	मित्र	सम	स्व	शत्रु	मित्र	स्व	शत्रु	शत्रु
उदयास्त	उदित	उदित	अस्त	उदित	उदित	उदित	उदित	अस्त	अस्त
वक्री, मार्गी	मा.	मा.	मा.	मा.	मा.	मा.	वक्री	वक्री	वक्री

	१ क्षेत्रबल	२ नवांशबल	३ उदयबल	४ वक्रबल	५ उच्चबल	योग
सूर्य	०।३।३१	०।११४१	१।०।०	०।०।०	०।५६।५	२।११।१७
चन्द्र	०।१५।५	०।४३।४६	०।४७।६	०।०।०	०।३६।२०	२।२२।२३
मङ्गल	०।६।७	०।२२।५	०।०।०	०।०।०	०।४३।५४	१।१५ ६
बुध	०।१७।४५	०।४०।२४	०।१६।३०	०।०।०	०।३३।५६	१।५१।३८
गुरु	०।४६।५८	०।७।२५	०।१४।५०	०।०।०	०।४१।१५	१।५३।३८
शुक्र	०।४४।२४	०।३६।२६	०।४६।५	०।०।०	०।४६।५८	२।५७।३
शनि	०।७।२५	०।३१।१	०।३६।३६	०।६।३४	०।५२।५	२।१६।४४
राहु	०।७।४०	०।८।५६	०।०।०	१।०।०	०।४०।२३	१।५६।५६
केतु	०।७।४०	०।८।५६	०।०।०	१।०।०	०।४०।२३	१।५६।५६

		वर्ण	नक्षत्र	राशि	स्वर	तिथि
बंबई स्थान का स्वामी चन्द्र	वर्णादि पञ्चक	व गु L	रोहिणी	वृष ०बु8	ओ	पूर्णा
काल का स्वामीचन्द्र	"	म बु8 ०शR	मघा	सिंह	इ	भद्रा १२ शुक्ल पक्ष
पण्य का स्वामी शनि	"	च ०गुL	रेवती	मीन	ओ	पूर्णा

व + गु L ०।७।३०
म + बु 3 ०।२२।३०

शुभ योग ०।३०।० शुभ शेष विंशोपक
द्वितीय अवधि के शेष विंशोपक ०।३०।०
प्रथम अवधि के शेष विंशोपक — ०।७।३०

अन्तर ०।२२।३० शेष शुभ फल विंशोपक

पूर्ववत् त्रैराशिक से $\frac{१}{८}\times\frac{३२५२}{३२०}\times\frac{३}{८}\times\frac{१६}{१}=\frac{१७५६}{१२८०}$ = ॥) आना। यह उत्तर आया; शुभ शेष होने से वर्तमान मूल्य में से घटाया २०३।) — ॥) तो २०२॥।) यह वर्तमान मूल्य हुआ!

स्थान बंबई। ता० १६।५।५१ शनिवार। मध्याह्नोत्तर १° ४५'बजे (स्टैंडर्ड टाइम) चांदी वैशाख वायदा का वर्तमान मूल्य २०३।-)

स्पष्ट ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
	१	६	१	०	११	२	५	१०	४
	४	७	५	६	१२	१६	२	२२	२२
	२३	५८	१२	३३	३६	१२	२७	१७	१७
	३२	३७	३१	१२	३१	४६	२३	४४	४४

गति कला	५७	८७१	४२	४५	११	६७	१	३	३
गति विकला	४५	३८	०	०	०	०	०	११	११
वक्र, शीघ्र, सम	×	शीघ्र	×	सम	शीघ्र	×	वक्री	वक्री	वक्री
स्वामित्रादि क्षेत्र	शत्रु	सम	सम	सम	स्व	मित्र	मित्र	शत्रु	शत्रु
स्वमित्रादिनवांश	शत्रु	सम	सम	स्व	शत्रु	मित्र	स्व	शत्रु	शत्रु
उदयास्त	उदित	उदित	अस्त	उदित	उदित	उदित	उदित	अस्त	अस्त
उच्च-नीच	उच्च	×	×	×	×	×	×	×	×
नक्षत्रपाद	कृ ३	स्वाति १	कृ ३	अश्विनी ३	उ.भा.१	आर्द्रा ३	उ.फा.२	पू.भा. १	पू.फा.३

स्वामिनिर्णयार्थ ग्रहों का क्षेत्रादिबल

ग्रह	१ क्षेत्रबल	२ नवांशबल	३ उदयबल	४ वक्रबल	५ उच्चबल	योग
सूर्य	०।४।२४	०।६।३२	१।०।०	०।०।०	०।५५।५६	२।६।५२
चन्द्र	०।१५।५७	०।२३।३५	०।५१।२६	०।०।०	०।३४।१०	२।५।८
मङ्गल	०।१०।२५	०।२६।१५	०।०।०	०।०।०	०।४३।४८	१।२०।२८
बुध	०।१६।६	०।१६।५	०।२१।०	०।०।०	०।३४।५	१।३०।१६
गुरु	०।५०।३८	०।६।४	०।१५।१०	०।०।०	०।४१।१७	१।५३।६
शुक्र	०।४१।२२	०।१२।१५	०।४५।३६	०।०।०	०।४६।४८	२।२६।१
शनि	०।७।२२	०।३१।३४	०।३६।१८	०।८।४२	०।५२।४	२।१६।०
राहु	०।७।४२	०।६।२०	०।०।०	१।०।०	०।४०।२३	१।५७।२५
केतु	०।७।४२	०।६।२०	०।०।०	१।०।०	०।४०।२३	१।५७।२५

	वर्ण	नक्षत्र	राशि	स्वर	तिथि
बम्बई स्थान का वर्णादिपञ्चक	ब	रोहिणी	वृष	ओ	पूर्णा
स्वामी चन्द्र	गुL	०बुठ			
काल का ”	य	ज्येष्ठा	वृश्चिक	उ	जया१३शुक्लपक्ष
पण्य का ”	च	रेवती	मीन	ओ	पूर्णा
स्वामी शनि	०गुL				

ब + गुL ०।७।३० शुभ शेष विंशोपक

आज के शेष विंशोपक पूर्वदिन के शेष शुभ फलविंशोपकों से न्यून हैं ; इस कारण अशुभ संज्ञक हुए। अब यहां त्रैराशिक से—

३/८ × ३२४४/३६० × १/८ × ३६/१ = १७३२/१२८० = ८ आना। यह उत्तर आया।

इसे वर्तमान मूल्य में जोड़ा तो २०२।।।) + ।।) = २०३।) यह वर्तमान मूल्य हुआ। यहां भी रिपोर्ट में २०३।~) छपा है। स्वल्पान्तर होने से दूषित नहीं है।

भव्ये हाथरसेतिनाम्नि नगरे श्रीनांगराणां वरे
वंशे स्मार्तधुरन्धरे नृपनुते पण्ड्येतिलोकश्रुते।
ज्योतिर्वित्प्रवरोऽर्घकाण्डकुशलः श्रीमोतिलालोऽजनि
व्याख्या तद्विहिता 'स्वभावसरला' भूयाद्विदां सिद्धये ॥

शुभम्भवतु।

श्रीमद्वराहमिहिराचार्यप्रणीत

बृहद्रत्नमञ्जूषान्तर्गत

अर्घनिरूपण

अथवा

सर्वतोभद्रचक्र की कुंजी

हिन्दी भाष्यकार

ज्योतिर्विद् पण्ड्या मोतीलालजी नागर

प्रस्तावना

जिस देश का वाणिज्य-व्यवसाय दिन पर दिन उन्नत होता है, वह देश सर्वश्रेष्ठ एवं आदर्श-देश गिना जाता है। वहां का एक छोटा सा व्यापारी भी वाणिज्य-कला का विलक्षण विद्वान ही नहीं; किन्तु एक आदर्श व्यापारी समझा जाता है। ऐसे ही समृद्धिशाली देश के उन्नतिशील व्यवसायी पुरुषों के पथ पर समस्त व्यापारीजगत् चलता है—उन लोगों के ज़रा से इशारे पर सम्पूर्ण जगत् के व्यापार-कार्य का संचालन होने लगता है और यह बात है भी ऐसी ही।

वाणिज्य-कला में प्रवीणता प्राप्त करने के लिये हमारे पास दो ही साधन हैं। एक तो लौकिक और दूसरा शास्त्रीय। किस देश में, किस समय, किस कारण से, किस चीज़ का क्या भाव है, और भविष्य में किन किन चीज़ों के विषय में विशेषज्ञ व्यापारियों की कैसी कैसी धारणायें हैं; इस प्रकार के ज्ञान को 'लौकिक साधन' कहते हैं। और इन्हीं पूर्वोक्त सब बातों को पहिले से जान लेना 'शास्त्रीय साधन' कहलाता है। ये दोनों साधन रथचक्रवत् परस्परसापेक्ष हैं—एक दूसरे के आधीन हैं। इन में से एक भी ऐसा नहीं है, जिसे मुख्य वा गौण कहा जा सके। उच्च-कोटि के व्यापारी के लिये इन साधनों की विविध सामग्रियों का संग्रह करते रहना बहुत ही ज़रूरी है।

वर्तमान समय में उक्त दोनों साधनों में से पहिला 'लौकिक साधन' तो इतना सुलभ हो गया है कि, लोग घर बैठे, सारे संसार के व्यापार-सम्बन्धी समाचार जीचाहे तब जान सकते हैं। इसके लिये उन लोगों के पास चिट्ठी-पत्री, तार, अखबार, टेलीफ़ोन, वायरलेस, रेडियो फ़ोन आदि कई एक सुलभ साधन हैं; किन्तु दूसरे 'शास्त्रीय साधन' की

परम उपयोगी अमोघ सामग्री का तो अणुमात्र अंश भी पास में नहीं है। जिस प्रकार त्रिकालदर्शी महर्षियों ने अन्यान्य विषयों पर भविष्य-फल जानने के लिये अनेकानेक सुगम मार्ग बतलाये हैं, वैसे ही पहिले से व्यापार-सम्बन्धी हर एक चीज़ की तेज़ी-मंदी और व्यापार का लाभदायक समय जान लेने के लिये भी कई ग्रन्थ लिखे हैं। बाद में उन्हीं पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों के आधार पर भूलण्डल के भिन्न भिन्न प्रान्तीय मर्मज्ञ अनुभवी विद्वानों ने भी इस विषय पर जो कुछ परिवर्तन होता गया, उसका उल्लेख करते हुए, कई एक अद्भुत चमत्कारी ग्रन्थ निर्माण किये हैं। जिनमें से सैकड़ों ग्रन्थ अब नामशेष ही रह गये हैं—उनका दर्शन होना अत्यन्त दुर्लभ है। फिर भी वस्तु का मूल्य निर्णय करनेवाले जो कुछ ग्रन्थ भारत वा अन्य देशों में जहां तहां विद्यमान हैं, उनकी कोई ऐसी स्वतंत्र सूची भी तैयार नहीं है, जिससे यह पता लग जाय कि, अमुक ग्रन्थ अमुक देश में, अमुक स्थान में, अमुक विद्वान् के पास या अमुक पुस्तकालय में विद्यमान है। यह कहना कुछ भी अत्युक्त न होगा कि, इस समय व्यापार-सम्बन्धी तेज़ी-मन्दी का शास्त्रीय ज्ञान कई पीढ़ियों से विद्वान् ब्राह्मणों और उच्चकोटि के व्यापारियों से कोसों दूर हट गया है। इस त्रुटि को दूर करने के लिये, भारतवर्ष में बड़े बड़े धनकुबेर और नामाङ्कित ज्योतिषी विद्वानों के होते हुए भी कोई विधान काम में नहीं लाया जा रहा है; यह बड़े ही खेद का विषय है।

तेज़ी-मन्दी बताने वाले ग्रन्थों में, इससमय नरपतिजयचर्योक्त 'सर्वतोभद्रचक्र' नामक ग्रन्थ का ही सर्वत्र विशेष आदर और प्रचार है। किन्तु उसके द्वारा निश्चय किये हुए प्रत्येक वस्तु के भावताव कभी सही मिलते हैं, कभी नहीं भी मिलते! बड़े बड़े विद्वान् और व्यापारियों को उस निर्णय से वास्तविक सन्तोष नहीं होता। इसका एकमात्र कारण यही है कि, उन लोगों के पास इस 'सर्वतोभद्रचक्र' के रहस्य को खोल देने वाली कोई ख़ास कुंजी नहीं है।

भारतीय व्यापारीवर्ग में, शुक्ल पक्ष की द्वितीया को चन्द्रदर्शन करने की प्रथा चिरकाल से प्रचलित है। उस दिन चन्द्रमा का कौनसा शृङ्ग (कोना) कितना ऊंचा है और गत मास की शुक्ल द्वितीया को किधर का कोना कितना ऊंचा था; इत्यादि जानने योग्य कितनी ही बातों को जान कर, कम से कम एक महिने तक की प्रत्येक व्यापारी वस्तु की तेज़ी-मंदी का सहज में ही अनुमान कर लेते थे और वह प्रायः सत्य ही निकलता था। यदि दैवात् स्वयं निर्णय न कर पाते, तो विशेषज्ञ विद्वानों से परामर्श करके निश्चय ही पूरा लाभ उठाते थे।

बहुत दिनों से, मैं ऐसे किसी ग्रन्थ की खोज में प्रयत्नशील था, जिसमें चन्द्रमा की शृङ्गोन्नति के द्वारा वस्तुओं के भाव-ताव का सही सही अनुमान हो जाय और साथ ही 'सर्वतोभद्रचक्र' के रहस्यों का भी सच्चा पता लग सके। मेरी यह अभिलाषा कानपुरनिवासी विद्यानुरागी सेठ राधाकृष्णजी बागला महोदय के द्वारा पूर्ण हुई। इसके लिये, मैं उनका जन्म-जन्मान्तरपर्यन्त ऋणी रहूँगा। उन्हों ने मुझे श्रीवराहमिहिराचार्यकृत बृहद्रत्नमञ्जूषा का 'अर्घनिरूपण' नामक प्रकरण दिया, जिसे मैं आप लोगों की सेवा में समर्पित कर रहा हूँ। हां, मैंने केवल इसका नाम ही 'सर्वतोभद्रचक्र की कुञ्जी' बदला है। और जहां तहां टिप्पणी तथा प्रत्येक श्लोक पर व्याख्या करके यथासाध्य मूल ग्रन्थ के तत्त्व को स्पष्ट करने की चेष्टा की है। इससे यदि व्यापारी जनता तथा विद्वत्समाज का किञ्चिदपि सन्तोष हुआ तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

काशी।
२-१०-३४

पंड्या मोतीलाल नागर

नम्र निवेदन ।

प्रिय पाठक,

समस्त व्यापारी जनता तथा विद्वत्समाज को लाभ पहुँचाने की सदिच्छा से प्रेरित हो कर यह,

"तेज़ी-मन्दी-ग्रन्थमाला"

प्रकाशित की जा रही है। इस माला में प्राचीन तथा अर्वाचीन मर्मज्ञ अनुभवी विद्वानों के एतद्विषयक सर्वोत्तम ग्रन्थ ही क्रमशः प्रकाशित होंगे। अतः सेवा में विनम्र निवेदन है कि, आप इस ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहक बन कर हमारे उत्साह को बढ़ाने की अवश्य कृपा करेंगे।

प्रकाशक ।

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्वराहमिहिराचार्यप्रणीत
बृहद्रत्नमञ्जूषान्तर्गत
अर्घनिरूपण

अथवा

सर्वतोभद्रचक्र की कुंजी ।

अथ भाव्यर्घबोधाय कथ्यते समयादिकम् ।
यामले सर्वतोभद्रमधिकृत्य यथोदितम् ॥ १ ॥
अतिगूढाशयं तच्च यथामति विविच्यते ।
द्वयोरपि स्थितिं ज्ञात्वा फलं वाच्यं हि कोविदैः॥ २ ॥

नत्वाऽऽचार्यान्निलिम्पान् गुरुपदकृपया सर्वतोभद्रभेत्रीं
वाचं व्यापारिसिद्ध्या अनुवदति बृहद्रत्नमञ्जूषयाप्ताम् ।
सम्यग्बोधाय तेषां विकलतरधियामर्घकाण्डे नृवाचा
पण्ड्योपाह्वोऽग्रजन्मा ग्रहगतिनिपुणो नागरो मोतिलालः ॥

अब हम प्रत्येक वस्तु का भविष्य में क्या मूल्य होगा? यह जानने के लिये, समय आदि का वर्णन करते हैं, जैसा कि 'रुद्रयामल' ग्रन्थ में सर्वतोभद्रचक्र के आधार पर कहा गया

है ॥ १ ॥ किन्तु रुद्रयामलोक्त सर्वतोभद्रचक्र का आशय अतिगूढ है—उसका जान लेना अत्यन्त कठिन है। इस लिये हम यथामति उक्त विषय का विवेचन करते हैं। विद्वानों को उचित है कि, वे लोग दोनों की स्थिति को अर्थात् सर्वतोभद्रचक्र का प्रकार और हमारे लिखे हुए इस विवेचन को खूब अच्छी तरह समझ कर ही फल कहें ॥ २ ॥

नित्यनैमित्तिके कुर्वन् नियमेन च साधकः।
विचारयेत्फलं ब्रूयाद्यथा न स्याद्वचो वृथा ॥ ३ ॥
सोऽपि कुर्वन् गणेशस्य चण्डिकायाः शिवस्य च।
नियमेन यथाशक्ति जपपाठार्चनादिकम् ॥ ४ ॥

सर्वतोभद्रचक्र के द्वारा वस्तु की तेज़ी-मंदी जाननेवाले साधक का कर्तव्य है कि, वह नित्य-नैमित्तिक कर्मों को नियम-पूर्वक करता हुआ, दोनों प्रकार की पद्धतियों को ध्यान में रख कर ही तेज़ी—मंदी आदि फल का विचार करे और ऐसा फल कहे, जिससे वाणी वृथा न जाय ॥ ३ ॥ पहले वचन में सामान्य कर्तव्य कहा है। अब विशेष कर्तव्य कहते हैं कि, साधक को चाहिये कि, वह गुरूपदिष्ट मार्ग द्वारा गणेश, शिव और दुर्गा; इन तीनों की अथवा इन तीनों में से किसी एक देवता की यथा शक्ति जप, पाठ, पूजन आदि के द्वारा नियमपूर्वक—निरन्तर उपासना करता रहे। तात्पर्य यह कि, गुरूपदिष्ट मार्ग से किसी भी इष्ट देवता की उपासना करते रहना, साधक के लिये अत्यावश्यक है। व्यापार के लिये ही इसका विचार करना और फल कहना

चाहिये। यौंही हँसी—मज़ाक या अपना पाण्डित्य दिखाने का विफलप्रयास नहीं करना चाहिये ॥ ४ ॥

सर्वेषामेव खेटानां चन्द्र एव बलप्रदः।
चन्द्रस्य च गतेः सारं तस्य शृङ्गोन्नतौ स्थितम् ॥५॥
तस्मात्पुरा प्रयत्नेन साध्या शृङ्गोन्नतिर्बुधैः।
न्यूनाधिक्यं च तत्रापि सूक्ष्मरीत्या प्रसाधयेत् ॥६॥

केवल चन्द्र ही सब ग्रहों को बल देनेवाला है। और चन्द्र की गति का सार उसकी शृङ्गोन्नति पर आधार रखता है ॥ ५ ॥ इस लिये तेज़ी—मंदी का विचार करनेवाले विद्वानों को चाहिये कि, वे सब से पहले शृङ्गोन्नति के साधन का प्रयत्न करें और उसमें भी शृङ्गोन्नति की न्यूनाधिकता का साधन यन्त्रादि द्वारा सूक्ष्मरीति से करें ॥ ६ ॥ *

* चन्द्र की शृङ्गोन्नति का साधन, मान्यवर महामहोपाध्याय पण्डितप्रवर श्रीयुत सुधाकर द्विवेदी जी के "वास्तवचन्द्रशृङ्गोन्नति" नामक ग्रन्थ से अथवा काशी के वर्तमान पञ्चाङ्गों में से दिग्दिगन्तविख्यातकीर्ति, महामहोपाध्याय श्रीयुत बापूदेवजी सी० आई० के पञ्चाङ्ग में सूक्ष्मरीति-साधित शृङ्गोन्नति का अंगुल व्यंगुल आदि मान लिखा रहता है, उससे काम लेना चाहिये। प्रत्येक मास में शुक्लपक्ष की द्वितीया के दिन चन्द्र की शृङ्गोन्नति का विचार होता है। स्थूल मान से वही शृङ्गोन्नति महीने भर तक मानी जाती है। उस दिन यह भी देखना चाहिये कि, पिछले महिने में वाम या दक्षिण कौनसा शृङ्ग (कोना) कितना ऊंचा था और इस महिने में किधर का कोना कितना ऊंचा है। इसी न्यूनाधिकता का संकेत ग्रन्थकार ने किया है। इस पर खूब सूक्ष्म विचार कर लेने से ही फलकी सत्यता प्रमाणित हो सकती है।

विद्धे चन्द्रेण ऋक्षादौ शुभे चास्मिन् शुभग्रहैः ।
वामश्चेदुन्नतं शृङ्गं † तदाऽवश्यं समर्घता ॥ ७ ॥

शुक्लपक्ष की षष्ठी ६ से कृष्णपक्ष की दशमी १० तक चन्द्रमा शुभ और कृष्णपक्ष की एकादशी ११ से शुक्लपक्ष की पञ्चमी ५ तक पाप वा क्रूर माना जाता है। सर्वतोभद्र चक्र की रीति से व्यापार की वस्तु * के नक्षत्र १ राशि २

---

† शुक्लपक्ष की द्वितीया के दिन पश्चिमदिशा की ओर मुख करके— चन्द्रमा के सामने खड़े हो कर देखने से यदि अपनी दाहिनी ओर का कोना ऊंचा दीख पड़े तो चन्द्र का वामशृङ्ग उन्नत मानना और यदि अपनी बांईं तरफ़ का कोना ऊंचा दीख पड़े, तो चन्द्र का दक्षिण शृङ्ग उन्नत मानना चाहिये। किन्तु जब दैनिक शृङ्गोन्नति का अतिसूक्ष्म विचार किया जाता है, तब कृष्णपक्ष में, पूर्व दिशा में उदय होनेवाले चन्द्रमा के सामने खड़े हो कर देखने से अपनी दाहिनी ओर का कोना ऊंचा दीख पड़े तो चन्द्र का दक्षिण शृङ्ग और बांईं तरफ़ का कोना ऊंचा दीख पड़े तो चन्द्र का वामशृङ्ग उन्नत मानना चाहिये।

* व्यवहार की वस्तु जिस नाम से बोली जाती हो, उसी प्राकृत वा संस्कृत नाम से उसके वर्ण, स्वर, तिथि, नक्षत्र और राशि; इन पांचों अंगों का वेधविचार करना चाहिये। जैसेः—चांदी का वर्ण 'च'। स्वर 'ओ' तिथि 'पूर्णा'। नक्षत्र 'रेवती'। और राशि 'मीन' होते हैं। इन पर किन ग्रहों का कब और कैसे वेध होता है; और उनका कब और कितना फल होता है; इत्यादि विषय 'सर्वतोभद्रचक्र' में विस्तृत रूप से लिखा है। कुछ ही दिनों बाद, अर्घकाण्डोपयोगी सर्वतोभद्रचक्र और उसकी एक स्वतन्त्र टीका प्रकाशित करनेवाले हैं; जिसमें ऐसे बहुत से अपूर्व विषयों का समावेश किया गया है; जिनका उल्लेख अब तक की छपी हुईं पुस्तकों में नहीं है।

वर्ण ३ स्वर ४ और ५ तिथि; इन पांचों में से किसी एक को शुभ चन्द्रमा वेध करता हो, और उस चन्द्रमा को बुध, गुरु तथा शुक्र में से कोई भी शुभ ग्रह वेध कर रहा हो और चन्द्रमा का वाम शृङ्ग उन्नत हो, तो वह वस्तु-जिसकी तेज़ी-मंदी का विचार किया जाता है—अवश्य मंदी होगी ॥ ७ ॥

शुभाशुभग्रहाभ्यां चेद्विद्धश्चन्द्रश्च तेन तत् ।
अल्पा महार्घता ज्ञेया क्रूराभ्यां च ततोऽधिका ॥८॥

वेधक शुभ चन्द्रमा को एक शुभ ग्रह और एक पापग्रह वेध करता हो, तो मामूली तेज़ी होती है। और वेधक शुभ चन्द्रमा को दो क्रूर ग्रह (सू. मं. श. रा. के.) वेध करते हों तो उससे अधिक अर्थात् जितनी तेज़ी का अनुमान किया हो, उससे आधी तेज़ी होती है। इसी तरह जितने अधिक क्रूर ग्रह वेध करते हों, तब उतनी ही अधिक तेज़ी होती है ॥ ८ ॥

तद्वेधिवेधिखेटानामपि जातिबलादिकम् ।
ज्ञात्वा फलं वदेत्साध्ये न सामर्थ्यं ततः परम् ॥६॥

वेधक शुभ चन्द्रमा को यदि कोई दूसरा शुभ वा पाप ग्रह वेध करता हो और उस (चन्द्रवेधक दूसरे ग्रह) को भी यदि कोई तीसरा शुभ वा पापग्रह वेध करता हो; तो उन वेधक ग्रहों का भी शुभत्व, पापत्व, उच्च-नीच, मित्र, सम-शत्रु-स्थान आदि बल का पूर्ण विचार करके फल कहना चाहिये। क्योंकि, ग्रहों की वेधपरम्परा में तीन वेधक ग्रहों तक ही फल देने की शक्ति होती है। इससे आगे चौथे, पांचवे आदि वेधक

ग्रह में फल देने की शक्ति नहीं होती। जैसे पितृपरम्परा में तीन पुरुषों तक ही पिण्डोदकादि ग्रहण का सामर्थ्य है ॥ ९ ॥

अशुभैः खेचरैर्विद्धे चन्द्रे दक्षे समुन्नते ।
महार्घत्वं वदेद्विज्ञान्मध्यमोत्तममध्यतः ॥१०॥

नक्षत्रादिको वेध करनेवाला शुभ चन्द्रमा यदि कई पाप-ग्रहों से विद्ध हो और उस चन्द्रमा का दक्षिण शृङ्ग ऊंचा हो, तो वस्तु के वर्तमान मूल्य पर जितनी तेज़ी की धारणा हो, उसके बीच का भाव बढेगा। जैसे किसी वस्तु का वर्तमान मूल्य ५८॥) है। इस पर ॥) तेज़ी की धारणा हो तो ।) से ।≈) तक बढेगा। १०॥

एवं शुभे शुभैर्विद्धे वामशृङ्गसमुन्नतौ ।
समर्घतोत्तमा ज्ञेया विपरीते ततोऽन्यथा ॥११॥

नक्षत्रादिवेधक शुभ चन्द्रमा को शुभ ग्रह वेध करते हों और चन्द्रमा का वामशृङ्ग उन्नत हो तो जिस वस्तु की तेज़ी-मंदी का विचार किया जाता है, वह वस्तु अधिक मंदी होती है। और इसके विपरीत नक्षत्रादिवेधक पाप चन्द्रमा को पाप-ग्रह वेध करते हों, और उसका दक्षिण शृङ्ग उन्नत हो तो वह वस्तु अधिक तेज़ हो जाती है ॥ ११ ॥

यहां पर 'विपरीते ततोऽन्यथा' इस वाक्य से यह भी प्रतीत होता है कि—'विद्धे चन्द्रेण'-इत्यादि सप्तम श्लोक से लेकर 'एवं शुभे शुभैर्विद्धे' इत्यादि ११ ग्यारहवें श्लोक तक जो कुछ कहा गया है, वह सब पाप चन्द्रमा हो तो विपरीत-रूपसे विचार करना चाहिये।

वेधकान्यग्रहश्चैवं विद्धश्चन्द्रेण चेद् भवेत् ।
तदा तस्य बलाधिक्यं तृतीयश्चेत्समाधिकम् ॥१२॥

किसी भी वस्तु के नक्षत्रादि को चन्द्र से भिन्न कोई दूसरा ही ग्रह वेध करता हो, और उसे चन्द्रमा वेध करता हो, तो उस पहले वेध-कारक ग्रह को चन्द्रमा अधिक बल देता है। और वस्तु के नक्षत्रादिवेधक ग्रह को यदि चन्द्रमा से भिन्न कोई दूसरा ही ग्रह वेध करता हो और उसे चन्द्रमा वेध करता हो, तो थोड़ा बल देता है। तात्पर्य यह है कि, वेध-कपरम्परागत तीन ग्रहों में पहिला वेधक कोई भी ग्रह दूसरे वेधक चन्द्रमा से विद्ध हो तो पहिले ग्रह को चन्द्रमा अधिक बल पहुंचाता है और यदि पहिला और दूसरा दोनों ही वेधक कोई भिन्न ही ग्रह हों और उनमें दूसरे ग्रह को यदि तीसरा वेधक हो कर चन्द्रमा वेध करता हो तो ऐसी दशा मे चन्द्रमा उस द्वितीय ग्रह को पहिले ग्रहकी अपेक्षा न्यून बल पहुँचाता है ।१२॥

चन्द्रान्यखेटयोः सम्यक् चिन्त्ये जातिबले बुधैः ।
द्वयोः स्थित्योः फले भेदश्चिन्तनीयः प्रयत्नतः ॥१३॥

वस्तु के नक्षत्रादि को वेध करनेवाले केवल चन्द्र का विचार तो पहिले वचनों द्वारा किया जा चुका है। अब अन्य ग्रह और चन्द्र के वेध-सम्बन्ध में विचार लिखते हैं कि—वस्तु के नक्षत्रादि को वेध करनेवाले चन्द्र और उससे भिन्न ग्रहों का उच्च, नीच, स्वगृही, मित्रगृही, समगृही शत्रुगृही, वक्रत्व, शीघ्रत्व, उदयास्त, जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादि अवस्था का अच्छी तरह विचार करके फल कहना चाहिये।

क्यों कि, चन्द्रमा किसी वेध कारक ग्रह को वेध करता हो अथवा वेधकारक चन्द्रमा को कोई दूसरा ग्रह वेध करता हो, तो इन दोनों स्थितियों में फल में भेद होता है-अर्थात् चन्द्रमा जिस ग्रहको वेध करता हो, उसे बहुत ही बलवान् बना देता है और चन्द्रमा को जो कोई दूसरा ग्रह वेध करता है, वह थोड़ा बल पहुंचाता है ॥ १३ ॥

दत्तशृङ्गोन्नतौ पापैर्वेधेऽधिकमहार्घता ।
समर्घता तथाऽन्यत्र मिश्रे मिश्रफलं वदेत् ॥१४॥

वस्तु के नक्षत्रादि को कोई पापग्रह वेध करता हो और उसे चन्द्रमा वेध करता हो, और चन्द्रमा का दक्षिण शृङ्ग उन्नत हो और उस चन्द्रमा को भी कोई पापग्रह वेध करता हो तो ऐसी दशामें वह वस्तु अधिक तेज़ होती है। इसी-प्रकार किसी वस्तु के नक्षत्रादि को कोई शुभग्रह वेध करता हो और उसे चन्द्रमा वेध करता हो और चन्द्रमा का वाम शृङ्ग उन्नत हो और चन्द्रमा को भी कोई शुभ ग्रह वेध करता हो तो वह वस्तु बहुत मंदी होती है । मिश्रित दशामें मिश्र फल होता है। सारांश यह कि, शुभ या पाप ग्रह और चन्द्रमा तथा चन्द्र की वाम किंवा दक्षिण शृङ्गोन्नति; इन तीनों में बल आदि की जितनी ही न्यूनाधिकता होगी, उतने-ही प्रमाण में फल में भी न्यूनाधिकता होगी अर्थात् तेज़ी-मंदी होगी ॥ १४ ॥

फलं किञ्चिदवेधे स्याज्जातकोक्तनिरीक्षिते ।
विनोच्चनीचराशिस्थौ वेधे दृष्टिस्तु निष्फला ॥१५॥

सर्वतोभद्रचक्र की रीति से वस्तु के नक्षत्रादि को कोई भी ग्रह वेध न करता हो, तब जातक-पद्धति के अनुसार कुण्डलीस्थ ग्रहों की तरह नक्षत्र और राशि पर किसी ग्रहकी दृष्टि होने से कुछ फल होता है। अर्थात् जितने पाद दृष्टि हो और दर्शक ग्रह का जितना बल हो, उसके अनुसार फल में न्यूनाधिकता होती है। किन्तु यह ध्यान रहे कि, उच्च और नीच राशि में स्थित दर्शक ग्रहों की दृष्टि निष्फल नहीं होती। उच्च नीच राशि से भिन्न किसी भी राशि में स्थित ग्रहों की दृष्टि सर्वतोभद्रचक्र में वेध होने पर निष्फल हो जाती है ॥ १५ ॥

अतः स्वतन्त्रसत्चक्राद्विचारः कथ्यतेऽधुना ।
वेधानुकूल एवायं युक्तोऽभावे दृशाऽऽहतः ॥१६॥

इसके आगे सर्वतोभद्रचक्र से अलग, स्वतन्त्र ही विचार कहते हैं। यह विचार वेध के अनुकूल होने से ही फल देने-वाला होता है और वेध न होने पर कुण्डली-अवलोकन की रीति से दृष्टि के अनुकूल फल देनेवाला होता है ॥ १६ ॥

समासमे यदैकैके मूल्ये स्यातां परापरे ।
महार्घता तदैकाहं विपरीते ततोऽन्यथा ॥१७॥

पहिले एकबार समभाव हो कर पीछे एकबार विषम भाव हो जाय, तो उस विषमभाव के बाद, एक दिन तक तेज़ी रहती है। और पहिले एकबार विषमभाव हो कर पीछे एक-बार समभाव हो जाय तो एक दिन तक मंदी रहती है। सम

२।४।६।८ इत्यादि और विषम १।३।५।७ इत्यादि जानना चाहिये ॥ १७ ॥

समाच्चेद्विषमे स्यातां त्रिदिनं ससर्कं त्रिषु ।
चतुःषु पक्षं माहार्घ्यं समर्घत्वं यदाऽन्यथा ॥१८॥

यदि एकबार समभाव के बाद दो बार विषमभाव हो जाय तो तीन दिन तक तेज़ी रहती है। एकबार समभाव के बाद तीनबार विषमभाव हो जाय तो सात दिन तक तेज़ी रहती है। एकबार समभाव के बाद चार बार विषमभाव हो जाय तो पन्द्रह दिन तक तेज़ी रहती है। इसी तरह एकबार विषमभाव के बाद दो बार समभाव हो जाय तो तीन दिन तक, तीन बार समभाव हो जाय तो सात दिन तक, चार बार समभाव हो जाय तो पन्द्रह दिन तक मंदी रहती है ॥ १८ ॥

ततोऽधिके स्वानुमानात्फलं वाच्यं विचक्षणैः ।
शृङ्गोन्नतिं सदैवेन्दोरत्रावश्यं विचिन्तयेत् ॥१९॥

इससे अधिक यदि सम विषमभाव की संख्या हो तो अपने अनुमान से तेज़ी-मंदी कितने दिन तक ठहरेगी; यह कल्पना करके कहे। परंतु इसमें भी चन्द्र की शृङ्गोन्नति का विचार बहुत ही आवश्यक है ॥ १९ ॥

वामोन्नतौ समर्घत्वं महार्घत्वं ततोऽन्यथा ।
संयोगे च वियोगे च द्वयोः पूर्णं फलं दलम् ॥२०॥

चन्द्र का वामशृङ्ग उन्नत हो तो मंदी और दक्षिण शृङ्ग उन्नत हो तो तेज़ी होती है। चन्द्र की शृङ्गोन्नति और समविषम-भाव विचार की एक ही स्थिति हो, तो पूरा फल होता है और दोनों की स्थिति में अन्तर हो तो आधा फल होता है या कुछ भी फल नहीं होता ॥ २० ॥

यदा कदाचिद्वेधस्य दृष्टेश्चापि न संभवः ।
तदैतदेव यत्नेन चिन्तनीयं विचक्षणैः ॥२१॥

किसी भी वस्तु के नक्षत्रराश्यादि को सर्वतोभद्रचक्र की रीति से वेध भी न होता हो और जातकपद्धति से किसी ग्रह की दृष्टि भी नहीं हो, तब १७, १८, १९ वें श्लोक की रीति से तेज़ी मंदी आदि फल का विचार करना चाहिये ॥ २१ ॥

एकविंशतिभिः श्लोकैरेभिः सारो मयोद्धृतः ।
शिवस्य यामलोक्तस्य वचनस्य यथामति ॥२२॥

इन इक्कीस श्लोकों द्वारा हमने शिवजी के यामलोक्त सर्वतोभद्रचक्र विषयक वचनों का सार यथामति उद्धृत (प्रकट) किया है। इसके जाने और विचारे बिना सर्वतोभद्रचक्र का वेधविचार करना निष्फल परिश्रममात्र है ॥ २२ ॥

भव्ये 'हाथरसे'-ति नाम्नि नगरे श्रीनागराणां वरे
वंशे स्मार्तधुरन्धरे नृपनुते 'पण्ड्ये'-ति लोकश्रुते ।
ज्योतिर्वित्प्रवरोऽर्घकाण्डकुशलः श्रीमोतिलालोऽजनि
व्याख्या तद्विहिता स्वभावसरला भूयाद्विदां सिद्धये ॥

इति शम् ॥

वाणिज्य-सर्वस्व

प्रत्येक वस्तु की तेजी-मंदी जानने का अपूर्व साधन

ग्रन्थकर्ता
ज्योतिर्विद् पण्ड्या मोतीलालजी नागर
अर्घकाण्ड-वाचस्पति

प्रस्तावना

—*—

प्रकृतिवादी प्रकृति को तो कर्मवादी कर्म को ही संसार में दृष्टिगोचर होनेवाले नित्य नये नये परिवर्तनों का प्रधान कारण बतलाते हैं। किन्तु हमारे ज्योतिश्शास्त्रप्रवर्तक त्रिकालदर्शी महर्षिगण इन समस्त परिवर्तनों का मूल कारण ग्रहों और राशियों को ही मानते हैं। उनकी दिव्यदृष्टि में विश्व का ऐसा एक भी पदार्थ नहीं, जिसपर इन ग्रहों और राशियों की सत्ता न हो। प्राचीन संहिता आदि आर्ष ग्रन्थों में जिसप्रकार हमारे परम कृपालु महर्षियों तथा उनके अनुयायी पूर्वाचार्यों ने देश, राष्ट्र, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि स्थावर-जंगम पदार्थों के भविष्य-ज्ञान का मार्ग विशदरूप से समझाया है, उसीप्रकार सांसारिक जीवन-निर्वाह के मुख्य साधनरूप वाणिज्य-व्यापार के विषय में भी अनेकों प्रकारों का उल्लेख करके अपने मन्तव्यों को प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिखाया है। परन्तु यह कहना कुछ भी अत्युक्त न होगा कि, चिरकाल से–कई शताब्दियों से भारतवर्ष में ऋषिप्रणीत रहस्य-सूचक ग्रन्थों के विलुप्त हो जाने और गुरु-परम्परा से उनके अध्ययन-अध्यापन की प्रणाली के उठ जाने से आज भारतवासियों की ऐसी शोचनीय स्थिति हो गई है कि, भारत की तत्काल चमत्कार दिखानेवाली विद्याओं में से 'ब्रह्मविद्या'

ब्राह्मणों से, 'युद्धविद्या' क्षत्रियों से और 'वाणिज्यविद्या' वैश्यों से कोसों दूर हट गई है। हां, इधर कुछ समय से भारतवर्ष में नये ढंग से व्यापार-कार्यों का संचालन होते देख, व्यापारी वस्तुओं की तेजी-मंदीसम्बन्धी भविष्यज्ञान की आवश्यकता प्रतीत होने पर भारतीय विद्वानों ने इस विषय के कुछ ग्रन्थ खोज कर प्रकाशित अवश्य किये हैं, परन्तु उनसे न तो विद्वत्समाज को ही पूर्ण संतोष होता है और न व्यापारीवर्ग को ही। यह एक भारी अवांछनीय त्रुटि है।

लगभग ४० वर्ष की बात है, जब मैं अपने जन्मस्थान हाथरस नगर में—जो भारत की प्रधान व्यापारी मंडियों में गिना जाता था—अपने पैतृक (यजमानों के) कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी कतिपय स्थानीय प्रसिद्ध व्यापारियों की समय-समय पर की हुई व्यापारी वस्तुओं की भावीरुखसम्बन्धी जिज्ञासाओं पर शास्त्रानुसारी निर्णय उन लोगों को बतलाता तो वह कभी तो एकदम पूर्ण सफल होता और कभी सर्वथा विपरीत ही घटित हो जाता था। जिससे ऐसी आत्मग्लानि होती कि, अपनी पूर्वजोपार्जित मान-प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये इस विषय से मैं कईबार विमुख हो बैठता। परन्तु मेरी अन्तरात्मा ने किसी तरह भी यह कभी स्वीकार नहीं किया कि, प्राचीन ग्रन्थकारों ने अर्घकाण्डसंबन्धी (तेजी-मंदी जानने के) प्रकरणों को लिखने में प्रतारणा की है। यही कारण था कि, मैं निरन्तर इस विषय की खोज में प्रयत्नशील रहा। संयोगवश संवत् १९८४ से अबतक लोकप्रसिद्ध, विद्या के प्रमुख केन्द्र-काशी के निवासकाल में मुझे भारतीय एवं पश्चिमीय अनेक नवीन ग्रन्थ भी देखने को मिले। तात्पर्य यह कि, वर्षों तक निरन्तर ऋषिप्रणीत एवं अन्यान्य पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों में तथा पश्चिमीय अनेक प्रख्यात विद्वानों के निबन्धों में बतलाये हुए प्रकारों की गहरी छानबीन और बाजार से मिलान करने पर आज मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि, निःसन्देह ग्रहों और राशियों के पारस्परिक दृष्टिसम्बन्धों के द्वारा प्रत्येक वस्तु की तेजी-मंदी के समय आदि का सहीसही पता लग जाता है और यह एक वैज्ञानिक तर्कसिद्ध उत्तम प्रकार है।

इतने दीर्घकाल के मेरे अनुसन्धानों के परिणामस्वरूप 'वाणिज्य-सर्वस्व' नामक बृहत् ग्रन्थ का यह प्रथम खण्ड आप के सामने है। प्रस्तुत पुस्तक में—अद्भुत दैवी नियम, फलितविकास का मूल आधार, फलादेश के लिये पञ्चाङ्ग कैसा हो, ग्रह राशि एवं उनके दृष्टियोगों का पदार्थों पर प्रभाव, आधुनिक व्यापारक्रम, निर्णयकर्ता की योग्यता, फलादेश के रहस्यसूचक साधन, दृष्टिपरिचय, दृष्टियों के दीप्तांश, दृष्टि-दीप्तांश-बोधक चक्र, अंशात्मक दृष्टियोगों का सामान्य शुभाशुभत्व, जयपराजय का नियम, दृष्टियोगों के शुभाशुभत्व का कारणसहित विशदीकरण, निर्णयोपयोगी शुभाशुभ द्विर्द्वादश तथा षडष्टक, ग्रहों के विषय में शास्त्रीय मन्तव्य, दृष्टियोगों के प्रभावकाल का ज्ञान, शरत्परिवर्तन का बाजार पर सर्वोपरि प्रभाव, ध्यान में रखने के योग्य विशेष नियम, तेजी-मंदी जानने की सरल पद्धति, रूई का बाजार;

आदि स्तम्भों में प्रतिपाद्य (तेजी मंदी) विषय का यथाशक्य सशास्त्र एवं सयुक्तिक प्रतिपादन किया गया है। साथ ही न्यूयार्क के रूई के बाजार की दीर्घकालीन, स्वल्पकालीन एवं दैनिक तेजी-मंदी के द्योतक ग्रहों के पारस्परिक दृष्टियोगों का उदाहरणसहित विशेष विशदीकरण भी कर दिया है, जिससे निर्णयकर्ता को किसी भी वस्तु के फलाफल के विचार में सुगमता हो सके। इस ग्रन्थ के अन्य खण्डों में क्रमशः सोना, चांदी, अलसी, गेंहू, पाट आदि सभी व्यापारी वस्तुओं की तेजी-मंदी जानने का प्रकार लिखा गया है, जो शीघ्र ही प्रकाशित करके आपकी सेवा में समर्पित किया जायगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ के निर्माण करने में काशीस्थ साङ्गवेदविद्यालय के प्रधान ज्यौतिषाध्यापक श्रीयुत पण्डित नीलकण्ठजी शास्त्री, स्थानीय पञ्चाङ्गकार ज्योतिषाचार्य पण्डित शिवशङ्करजी पाण्डेय तथा पाश्चात्य ज्योतिर्विद्या के विशेषज्ञ वयोवृद्ध श्रीयुत बाबू माधवप्रसादजी सिंहल द्वारा जो भारतीय एवं पश्चिमीय ग्रन्थों और अनेक जटिल विषयों के सम्बन्ध में समय समय पर सत्परामर्श और साहाय्य मिला है, उसके लिए उक्त विद्वानों का मैं हृदय से आभारी हूँ।

व्यापारी जनता तथा विद्वत्समाज को मेरे इस प्रयास से कुछ भी संतोष हुआ तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

काशी। विनीत—

पण्ड्या मोतीलाल नागर

वाणिज्य-सर्वस्व

(प्रथम खण्ड)

अद्भुत दैवी नियम।

देश, काल तथा वस्तुमात्र के साथ ग्रहमण्डल और राशिमण्डल का बहुत ही गहरा सम्बन्ध है, जिसके द्वारा भिन्नभिन्न देशों में, भिन्न भिन्न समयों में संसार के सभी जड़-चेतन पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति और लय होता रहता है। ग्रहों और राशियों की ईश्वरप्रदत्त अलौकिक शक्ति की ही यह महिमा है कि प्रतिक्षण सभी पदार्थों में परिवर्तन होता दीख पड़ता है। मेषादि द्वादश राशियाँ सबका आश्रयस्थान हैं—जगत् के सभी जड़चेतनात्मक पदार्थों का इन्हीं बारह राशियों में समावेश है। ग्रहमण्डल भी इन्हीं बारह राशियों में आश्रय पाता और अपनी अपनी गति के अनुसार भ्रमण करता हुआ अपने अपने अधिकार में आये हुए पदार्थों पर यथा समय न्यूनाधिक मात्रा में अच्छा या बुरा प्रभाव डालता रहता है, यह एक अद्भुत दैवी नियम है और अटल है।

फलित-विकास का मूल आधार।

ग्रह और राशि—इन दोनों शब्दों में ही उपर्युक्त विवेचन का बोधक अर्थ विद्यमान है। ग्रहों को इसलिये ग्रह कहा जाता है

कि, ये जगत् के सभी पदार्थों को ग्रहण कर लेते हैं—जकड़ लेते हैं अथवा अपने नियन्त्रण में रखते हैं। 'राशि' शब्द का अर्थ है समुदाय, संग्रह या इकट्ठा करना या अपने में सभी पदार्थों का समावेश करना। ग्रह और राशि शब्द का यद्यपि यह सामान्य अर्थ है तथापि दोनों में अन्तर इतना है कि, ग्रह की सत्ता राशि के सहयोग से, कुछ नियत समय तक ही इन (ग्रह और राशि) के अधीन पदार्थों पर रहती है। परन्तु राशि की सत्ता ग्रह की सहयोगावस्था अथवा उसके दृष्टिकाल में तो ग्रहानुकूल उभयाधीन पदार्थों पर रहती है और ग्रह की अनुपस्थिति या दृष्टि के अभाव में केवल अपने अधीन पदार्थों पर ही रहती है। सारांश यह कि, ग्रहों और राशियों के पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर ही जगत् का सम्पूर्ण व्यवहार चलता है। इस विषय में सभी महर्षियों तथा पूर्वाचार्यों का एक ही मत है और फलितशास्त्र के विकास का भी यही एकमात्र मूलभूत आधार है।

फलादेश के लिये पञ्चाङ्ग कैसा हो ?

फलकथन के लिये—छोटे से छोटे और बड़े से बड़े काम के लिये—'पञ्चाङ्ग' ही सबसे उत्तम और मुख्य साधन है। पञ्चाङ्ग के निर्माण करने में इस समय दो पद्धतियां प्रचलित हैं। एक 'निरयन' और दूसरी 'सायन'। भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र निरयनपद्धति का ही प्रचार है और पाश्चात्य देशों में अबाधरूप से सायनपद्धति का। 'सायन' किंवा 'निरयन' किसी भी पद्धति से

पञ्चाङ्ग बनाया जाय, किन्तु उसका गणितविधान कैसा हो, इस विषय में ज्योतिश्शास्त्रप्रवर्तक महर्षियों तथा उच्चकोटि के अनुभवी विद्वानों का एकमुख यही कहना है कि— "वही गणित सच्चा और फल की सत्यता को प्रमाणित करनेवाला होता है, जिसका आकाशस्थ ग्रह, नक्षत्र आदि से ठीकठीक मिलान हो जाय और उसके आधार पर निश्चित किया हुआ फल का समय भी पल-विपल तक सही हो।" अतएव यह निर्विवाद है कि, फलादेश के लिये विविध यन्त्रों द्वारा सिद्ध स्पष्ट ग्रहगणित को ही काम में लाना चाहिये। यह काम उच्चकोटि की 'वेधशाला' के बिना हो नहीं सकता। भारतीय वेधशालाओं की अपेक्षा ग्रीनविच की वेधशाला इस समय सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है। उसके आधार पर सायनपद्धति से बनाये हुए पञ्चाङ्गों में 'राफाइल' के पञ्चाङ्ग को हम फलादेश के लिए अधिक उपयोगी समझते हैं। क्योंकि, उसमें ग्रहों का दैनिक स्पष्टीकरण, ग्रहों के राशिभोग, शरभोग तथा क्रान्तिभोग की गति एवं ग्रहों के शरपरिवर्तन आदि निर्णयोपयोगी साधनों के अतिरिक्त ग्रहोंका पारस्परिक दृष्टिसम्बन्ध (एस्पेक्टेरियन) अलग से दिया रहता है, जिससे किस महिने की किस तारीख को किस समय किस ग्रह के साथ किस ग्रह का कैसा अंशान्तरात्मक दृष्टिसम्बन्ध हो रहा है; यह स्पष्टरूप से मालूम हो जाता है। निर्णयकर्ता को गणित के द्वारा प्रचलित दृष्टिसम्बन्धों के निर्माण करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु जबतक वैसा निर्णयोपयोगी कोई भारतीय पञ्चाङ्ग

प्रकाशित न हो, तबतक राफाइल की 'एफीमरी' (अंग्रेजी पंचाङ्ग) को काम में लाने के लिये, हम अपने भारतवासी फलवक्ताओं से साग्रह अनुरोध करते हैं, जिससे उन्हें फलकथन में अधिकाधिक सफलता प्राप्त हो। जो लोग अंग्रेजी नहीं जानते, वे काशी के दिग्दिगन्तविख्यातकीर्ति महामहोपाध्याय श्रीयुत पण्डितप्रवर बापूदेवजी शास्त्री सी० आई० के पञ्चाङ्ग, या कलकत्ता की 'विशुद्ध-सिद्धान्तपत्रिका' अथवा 'सन्देश' और 'जन्मभूमि' नाम के गुजराती पञ्चाङ्गों को काम में लावें। क्यों कि, व्यापारसम्बन्धी अत्यन्त सूक्ष्म और जिम्मेदारी के काम के लिये उक्त पञ्चाङ्गों का गणितविधान विशेष विश्वसनीय सिद्ध हो चुका है।

ग्रह, राशि एवं उनके दृष्टियोगोंका पदार्थों पर प्रभाव।

भारतीय ज्योतिशास्त्र में फलादेश के लिये मेषादि द्वादश राशियां तथा सूर्यादि नव ग्रहों का उपयोग किया है, किन्तु पश्चिमीय फलवक्ता ज्योतिषियों ने सूर्यादि नव ग्रहों के अतिरिक्त 'हर्शल' 'नेपच्यून' और 'प्लूटो' नाम के नवीन ग्रहों को भी— जो क्रम से कुम्भ, मीन तथा मेष राशि के स्वामी हैं—फल-दायी माना है।

किन किन देशों, प्रान्तों और स्थानों पर, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात्रि, मुहूर्त, क्षण, निमेष आदि काल के अवयवों तथा धातु, मूल और जीवात्मक-क्रय-विक्रय के पदार्थों पर किन किन ग्रहों और राशियों का प्रभुत्व है, यह बात भारतीय

प्राचीन ज्योतिशास्त्र के संहिता आदि आर्ष ग्रन्थों में विस्तार से लिखी गई है। जिस समय कोई ग्रह किसी राशि, नक्षत्र वा नक्षत्रगत किसी चरण में प्रवेश करता है अथवा किसी दूसरे ग्रह से कुछ नियमित अंशों की दूरी पर रहकर संयोग, प्रतियोग आदि कोई अंशान्तरात्मक दृष्टिसम्बन्ध करता है, उस समय उस ग्रह का जगत् के किन किन पदार्थों पर कैसा और कितना प्रभाव पड़ता है, इत्यादि अनेक आवश्यक और ज्ञातव्य विषयों का सविस्तर वर्णन भी उन ग्रन्थों में पाया जाता है।

प्राचीन तथा नवीन, भारतीय एवं पाश्चात्य, विविध ग्रन्थों के सतत अनुशीलन एवं उनके बतलाये हुए विभिन्न प्रकारों से वर्षों निरन्तर परिश्रम करने पर आज हम आग्रहपूर्वक कह सकते हैं कि, यदि आप केवल ग्रहों और राशियों के पारस्परिक दृष्टिसम्बन्धों पर ही मनोयोगपूर्वक ध्यान देंगे, तो उसके द्वारा सोना, चांदी, रूई, अलसी, गेंहू, पाट आदि सभी व्यापारी वस्तुओं की तेजी मंदी का सही सही अनुमान लगा सकेंगे और स्वयं लाभ उठाते हुए व्यापारीवर्ग को भी लाभ पहुँचा सकेंगे। साथ ही ऐसी परमोत्तम अमोघ विद्या को, जो कालचक्र की वक्रगति के कारण विलुप्तप्राय एवं जीर्ण-शीर्ण अवस्था को पहुँच गयी है पुनरुज्जीवित करने का श्रेय भी प्राप्त करेंगे।

आधुनिक व्यापारक्रम

जब कि इस परिवर्तनशील संसार की सभी बातों में बराबर परिवर्तन होता रहता है, तब व्यापार के क्रम का बदल जाना

भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आज यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि, जिसकी दूकान में मुट्ठी भर भी अन्न नहीं, वह लाखों टन गेहूँ बाजार में खरीद और बेच सकता है। दिनभर में कोई लक्षाधिपति बन बैठता है तो कोई अपना सर्वस्व खो बैठता है। इसे ही आजकल के व्यापारी लोग 'सट्टा' कहते हैं। करोड़ों व्यक्ति इस प्रकार के व्यापार में व्यस्त हैं। बड़े बड़े नगरों में 'एसोसिएशन' 'चैम्बर' आदि प्रशस्त कही जानेवाली अनेक संस्थाएँ योग्य संचालकों द्वारा नियमितरूप से कार्य कर रही हैं। हजारों व्यापारी स्वयं अथवा उनके प्रतिनिधिगण, कमीशन एजेंट, ब्रोकर (दलाल) आदि वहां पर बराबर क्रय-विक्रय करते रहते हैं और उसके फलस्वरूप व्यापारी वस्तुओं का भाव भी घटता बढ़ता रहता है। इस विषय में सामान्यतया लोगों की धारणा है कि, बाजार में जब किसी चीज के खरीदनेवालों की संख्या बढ़ जाती है, तब उस वस्तु का मूल्य बढ़ जाता है और जब बेचनेवालों का जोर बढ़ जाता है, तब उस वस्तु का भाव गिर जाता है। परन्तु वास्तव में यह बात ऐसी नहीं है। क्योंकि, मनुष्यमात्र के सभी कार्य उनकी इच्छाशक्ति से हुआ करते हैं। प्रत्यक्ष देखा जाता है कि, मनुष्य जो कुछ मन से सोचता है, उसे वाणी से कहता और अन्य इन्द्रियों की सहायता से कर डालता है। किये हुए कर्म का फल ही सुख-दुःख अथवा हानि-लाभ है। इससे सिद्ध होता है कि, हानिलाभ को स्वयमेव पैदा करलेनेवाला मन इन्द्रिय सब मनुष्यों के पास है और उसके

द्वारा ही मनुष्यमात्र व्यापार करता और हानिलाभ उठाता है। किसी विचार का मन में उठना और तदनुसार कार्य करना भी ग्रहों को मनुष्यों के ऊपर सत्ता होने के कारण हुआ करता है। इतना ही नहीं, किन्तु ग्रहों का हमारे आत्मा, मन और हस्तपादादि कर्मेन्द्रियों तथा आंख-कान आदि ज्ञानेन्द्रियों के साथ अतिनिकट का सम्बन्ध है। ज्योतिश्शास्त्रप्रवर्तक ऋषियों ने बतलाया है कि जिसे लोग आत्मा कहते हैं, वह ज्योतिश्शास्त्र-संकेतित सूर्य है, जिसके द्वारा मनुष्यमात्र के पुण्यात्मा अथवा पापात्मा, सदाचारी वा दुराचारी होने का अनुसन्धान किया जा सकता है। मन को ज्योतिश्शास्त्र में चन्द्र शब्द से व्यवहृत किया है। चन्द्र के द्वारा मनुष्यों के मानसिक विचारों का पता लगाया जा सकता है। इसी प्रकार भौमादि ग्रहों का शरीरगत रक्त, मांस, मज्जा आदि पदार्थों पर प्रभुत्व बतलाया गया है। यह तो हुई हमारे शरीर की बात! किन्तु इन्हीं सूर्यादि ग्रहों का व्यापारसम्बन्धी पदार्थों पर भी स्वतन्त्र अधिकार है, जिससे व्यापारी वस्तुओं की घटाबढ़ी के समय आदि का सही सही पता लगता है।

निर्णयकर्ता की योग्यता।

किसी भी वस्तु की तेजी-मंदी का ठीक ठीक पता लगाने के लिये, यह अत्यावश्यक है कि, निर्णयकर्ता ज्योतिश्शास्त्र का अच्छा जानकार हो, लग्नकुण्डली की विशेषताओं को समझता हो, ग्रहों और राशियों के स्वभाव-गुण आदि को खूब अच्छी-

तरह जानता हो, ग्रहगणित के द्वारा ग्रहों के पारस्परिक दृष्टि–सम्बन्धों को निर्माण करके उनके शुभाशुभत्व का यथार्थ विचार करने में कुशल हो और कौन सा ग्रह किस समय किस राशि में प्रवेश कर रहा है ? उसका किस वस्तु पर कैसा और कितना प्रभाव पड़ेगा ? कौनसा व्यापार किस तरह किया जाता है ? इत्यादि बातों को बिना किसी दूसरे व्यक्ति की सहायता के विचार करने में प्रवीण हो। यदि ऐसा नहीं है तो उसके लिये यही अच्छी सलाह है कि, वह सबसे पहिले ऊपर लिखे गये विषयों की जानकारी और पूरा अभ्यास करले, तब आगे लिखे हुए नियम-सूत्रों से काम ले।

फलादेश के रहस्यसूचक साधन।

यह तो पहिले कहा जा चुका है कि, ग्रहों और राशियों का परस्परसापेक्ष ऐसा सम्बन्ध है, जिससे संसार के सभी जड़-चेतन पदार्थों में प्रतिक्षण बराबर परिवर्तन होता रहता है। केवल राशि में यह शक्ति नहीं है कि, वह कुछ भी फलाफल कर सके। इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्धों के द्वारा किन किन पदार्थों पर कब कैसा और कितना प्रभाव पड़ता है इत्यादि बातों को पहिले से ही जान लेने के लिये त्रिकालज्ञ महर्षियों तथा उनके अनुयायी अन्यान्य पूर्वाचार्यों ने सामान्य एवं विशेष शास्त्र का निर्माण किया। किन्तु सामान्य और विशेष शास्त्र भी ग्रहों और राशियों

की तरह परस्परसापेक्ष हैं। दोनों में शरीर और प्राण जैसा अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। सामान्य शास्त्र शरीर है तो विशेष शास्त्र प्राण है। जिस तरह प्राण सूक्ष्म और अत्यावश्यक होते हुए भी शरीर के सापेक्ष है, उसी तरह विशेषशास्त्र भी सामान्य शास्त्र के सापेक्ष है। इतनाही नहीं, किन्तु जिसतरह शरीर के न रहने पर प्राण की कोई भी क्रिया पूरी नहीं हो सकती, ठीक उसी–तरह सामान्यशास्त्र के बिना विशेष शास्त्र भी क्रियारहित हो जाता है। अत एव यह निर्विवाद सिद्ध है कि जितना सुन्दर और सूक्ष्म विवेचन विशेषशास्त्र के द्वारा किया जा सकता है, उतना सामान्यशास्त्र से नहीं किया जा सकता। फिर भी सामान्य-शास्त्रज्ञान का होना अत्यन्त अवश्यक है। सारांश यह कि, सामान्य एवं विशेष शास्त्र के समन्वय के द्वारा प्रत्येक पदार्थ से सम्बन्ध रखनेवाले ग्रहों का शुभाशुभत्व और उन की सामान्य तथा विशेष (अंशान्तरात्मक) दृष्टियों के समन्वय से यदि उन पदार्थों के भावी शुभाशुभ फल का निर्णय किया जायगा, तो वह विशेष सफल एवं विश्वसनीय सिद्ध होगा।

किसी भी वस्तु की तेजी मंदी जानने के लिये जिस प्रकार राशिमण्डल के अंशान्तरात्मक दृष्टिस्थान साधनीभूत हैं, उसी प्रकार ग्रह भी मुख्य साधन हैं। क्योंकि, सभी ग्रह समय समय पर अपनी अपनी गति के अनुसार राशिमण्डल में अंशान्तर–वाले दृष्टियोगों के उत्पादक हैं। ग्रहों का वस्तु की राशि–लग्न से केन्द्र त्रिकोणादि भावों के स्वामी होने के कारण शुभाशुभत्व भी

बदलता रहता है। इस विषय में निर्णयकर्ता बुद्धिमानों को चाहिये कि, वे सामान्यशास्त्र में बतलाई हुई 'द्वादशभाव, राशि, राशिस्वामी, ग्रहों का स्पष्टीकरण, ग्रहों का शुभाशुभत्व, त्रिकोण केन्द्रादि संज्ञाऐं' सामान्यशास्त्र के द्वारा समझ लें। विशेषशास्त्र के अनुसार जानने योग्य विशेष संज्ञाऐं निम्नलिखित हैं।

वस्तु की राशि-लग्न से त्रिकोण (पञ्चम नवम स्थान) के स्वामी सभी ग्रह (भले ही वे सामान्यशास्त्र के द्वारा शुभ हों वा पाप हों) शुभफल करते हैं। जो पापग्रह तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थान के स्वामी हों, तो वे शुभफल नहीं देते। इन्हीं स्थानों के स्वामी शुभग्रह हों, तो वे अपने शुभस्वभाव का सामान्य शुभफल देते हैं। जो शुभग्रह केन्द्र अर्थात् चौथे, सातवें और दसवें स्थान के स्वामी हों, तो वे शुभफल नहीं देते। इन्हीं स्थानों के स्वामी पापग्रह हों, तो वे अशुभफल नहीं देते। पूर्वोक्त स्थानों में पांचवें से नवम, तीसरे से छठा, छठे से ग्यारहवां, चौथे से सातवां और सातवें से दसवां स्थान बलवान् है। त्रिकोणेश से त्रिषडायपति पापग्रह पापी हैं। त्रिषडायपति पापग्रह से केन्द्रेश शुभग्रह अधिक पापी हैं। केन्द्रेश शुभग्रह से त्रिषडायपति पापग्रह शुभ हैं। और त्रिषडायपति पापग्रह से त्रिकोणेश अधिक शुभ है।

वस्तु की राशि-लग्न से बारहवें और दूसरे स्थान के स्वामी जिस भाव में हों, उसके स्वामी हो कर जैसे शुभ वा अशुभ हो

सकते हों, वैसे होंगे। जिस आवेश के साथ हों, वह जैसे शुभ वा अशुभ हों, वैसे होते हैं। अथवा वे किसी दूसरे स्थान के स्वामी हों और उस कारण से जैसे शुभ वा अशुभ हों, वैसे ही होते हैं। ग्रह दो स्थानों के स्वामी होने से भिन्न भिन्न फल देनेवाले होते हैं, वैसे यह व्ययेश और द्वितीयेश नहीं होते। यदि यह व्ययेश और द्वितीयेश न तो किसी अन्य स्थान के स्वामी हों और न किसी ग्रह के साथ हों किन्तु बारहवें अथवा दूसरे स्थान में ही स्थित हों, तो न शुभ और न अशुभ केवल समफलदायक होते हैं।

भाग्यस्थान से व्ययस्थान (अष्टमस्थान) का स्वामी होने के कारण अष्टमेश अत्यन्त अशुभ होता है। सब व्ययस्थानों से भाग्य का व्ययस्थान मृत्युरूप है; इसलिये अत्यन्त अशुभ है। वह अष्टमेश ही यदि लग्न का भी स्वामी हो तो शुभफल से योग कराता है, पूर्ण शुभ नहीं होता। सारांश यह कि, अष्टमेश जैसे पापी को शुभ योग करानेवाला लग्नेश अत्यन्त शुभ है; यह भी स्पष्ट है।

केन्द्र के स्वामी होने से शुभग्रह गुरु और शुक्र अन्य शुभग्रहों की अपेक्षा अधिक पापी होते हैं और मारक भी होते हैं। केन्द्र के स्वामी गुरु-शुक्र मारकस्थान (द्वितीय वा सप्तम) में पड़े हों तो प्रबल मारक (अत्यन्त पापी) होते हैं। केन्द्रस्वामी गुरु-शुक्र से केन्द्रेश बुध कुछ न्यून पापी होता है। इसी तरह केन्द्रेश बुध से केन्द्रेश चन्द्रमा न्यून पापी होता है। और सूर्य चन्द्र को

अष्टमेश होने का भारी दोष नहीं होता, सामान्य दोष तो रहता ही है।

पापग्रह केन्द्रेश होता हुआ त्रिकोण का भी स्वामी हो तो शुभ फल देता है, केवल केन्द्रेश होनेसे शुभ फल नहीं देता। इससे स्पष्ट है कि, पापग्रह केन्द्रेश होकर त्रिषडायपति अथवा अष्टमेश भी हो तो पापी ही होता है।

राहु-केतु जिस भाव में स्थित हों अथवा जिस भावेश के साथ हों, बलवान् होने से उन उन फलों को मुख्यरूप से देते हैं।

केन्द्रेश और त्रिकोणेश का आपस में सम्बन्ध होना ही 'योग' है। इसी से वे दोनों योगकारक कहे जाते हैं। और वे शुभफल से जो अधिक योगफल है, उसे देते हैं। यदि वे दोनों केन्द्रेश-त्रिकोणेश को छोड़कर दूसरों से सम्बन्ध न करते हों, तो विशेष योगफल देते हैं। ग्रहों का आपस में जो सम्बन्ध होता है, वह चार प्रकार से होता है। १ दोनों एक स्थान में हों, २ दोनों परस्पर पूर्णदृष्टि से देखते हों, ३ दोनों एक दूसरे के स्थान में हों, ४ एक तो दूसरे के स्थान में हो और दूसरा उसे पूर्णदृष्टि से देखता हो। ग्रह जिस राशि का स्वामी होता है, वह राशि उसका स्थान कहा जाता है।

केन्द्रेश और त्रिकोणेश दोनों वा दोनों में से एक अपने दोष से युक्त हों, तो भी केवल सम्बन्ध से बलवान् होते हैं और योगकारक होते हैं। केन्द्रेश शुभग्रह हो तो स्वयंदोषी होता है और नीचस्थ होना अस्त रहना इत्यादि भी स्वयंदोष हैं।

केन्द्रेश त्रिकोण में हो और त्रिकोणेश केन्द्र में हो, यह एक योग हुआ। पहिले योग से यह योग कुछ न्यून है। केन्द्रेश और त्रिकोणेश दोनों केन्द्र में हों अथवा त्रिकोण में हों, यह दूसरा योग हुआ। यह योग उससे भी न्यून है। केवल केन्द्रेश त्रिकोण में हो या केवल त्रिकोणेश केन्द्र में हो; यह तीसरा योग हुआ। यह योग सबसे न्यून है।

किसी त्रिकोणेश का दशमेश से सम्बन्ध हो अथवा किसी केन्द्रेश का नवमेश से सम्बन्ध हो तो उत्तम योग होता है। उच्च, स्वगृह, मूलत्रिकोण, स्ववर्ग; इनमें जो योगकारक हों, तो भी उत्तम योग होता है।

केन्द्र और त्रिकोण का स्वामी एक ही ग्रह हो, तो वही एक ग्रह केन्द्रेश होने से और त्रिकोणेश होने से भी योगकारक होता है। पहिले जो यह कहा गया है कि 'एक ही ग्रह दो स्थानों का स्वामी होने से दो प्रकार के फलों को देता है' परन्तु यहाँ वैसा नहीं है। यही दोनों स्थानों का स्वामी योगकारक होता हुआ यदि दूसरे त्रिकोणेश से भी सम्बन्ध करता हो तो फिर उससे उत्तम और क्या होगा?

राहु-केतु यदि केन्द्र में हों और वे त्रिकोणेश से सम्बन्ध करते हों अथवा त्रिकोण में हों और वे केन्द्रेश से सम्बन्ध करते हो, तो भी योगकारक होते हैं। दोनों से सम्बन्ध करें तो फिर योगकारक होने में सन्देह ही क्या है?

यदि त्रिकोणेश अष्टमेश भी हो अथवा जो केन्द्रेश अष्टमेश वा लाभेश भी हो, उनके सम्बन्धमात्र से योग नहीं होता— योगभंग हो जाता है। यदि अन्य त्रिकोणेश अथवा अन्य केन्द्रेश का भी सम्बन्ध हो तो अवश्य योग होगा।

लग्नेश और दशमेश दोनों लग्न में हों वा दशमस्थान में हों, तो यह दोनों राजयोग होते हैं। इसी तरह नवमेश और दशमेश नवम में हों वा दशम में हों, तो यह दोनों भी राजयोग होते हैं। इन चारों विशिष्ट राजयोगों में वस्तु के मूल्य में विशेष वृद्धि होती है।

दृष्टि-परिचय।

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च।
हिरण्ययेन सविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन्॥

शुक्ल यजुर्वेद के इस मन्त्र में तत्त्वरूप से कहा गया है कि, "भगवान् सूर्यदेव भुवनों को देखते हुए भ्रमण करते हैं।" यहाँ पर सूर्य उपलक्षणमात्र है। अतएव सूर्य की तरह अन्य ग्रह भी भुवनों को देखते हुए नियमबद्ध भ्रमण करते रहते हैं। और भुवनशब्द भी राशिमण्डल के द्वादश भुवनों का द्योतक है, जो कि सूर्यादि ग्रहों के परिभ्रमण का मार्ग है। बस, इसी वेद-प्रतिपादित सूर्यादिग्रहों की भुवनों पर डाली हुई दृष्टि को हमारे ज्योतिश्शास्त्रप्रवर्तक महर्षियों तथा अन्यान्य पूर्वाचार्यों ने विशदरूप से समझाया है।

जातकशास्त्र के प्रणेता आचार्यों ने दृष्टि को एकपाद, द्विपाद, त्रिपाद तथा चतुष्पाद; इस प्रकार चार भागों में विभाजित किया और किसी भी राशि वा भाव में स्थित ग्रह को द्रष्टा तथा उस ग्रह से कुछ नियत दूरी पर स्थित राशि, भाव अथवा तद्गत ग्रह को दृश्य मानकर, ग्रहों के शुभाशुभ-स्वभावानुसार फलकथन की पद्धति निर्माण की। किन्तु महर्षि पराशर के अनुयायी विद्वानों ने पूर्वोक्त दृष्टि-विभाजन को सामान्य ठहराया। केवल सप्तमस्थान पर होनेवाली पूर्ण दृष्टि को ही स्वीकार किया। साथ ही जिन जिन स्थानों पर अन्य आचार्यों ने एक-पादादि दृष्टि का होना माना था, वहाँ वहाँ क्रम से शनि, गुरु और मङ्गल की पूर्णदृष्टि को ही माना और केन्द्र-त्रिकोण आदि भावों के स्वामी ग्रहों में शुभाशुभत्व स्थापित करके फलादेश का मार्ग प्रस्फुट किया, जो विशेष आदरणीय हुआ।

स्वरोदयशास्त्र में ग्रहों की पूर्वोक्त दृष्टियों के अतिरिक्त दक्षिण-दृष्टि, वामदृष्टि, सम्मुखदृष्टि, ऊर्ध्वदृष्टि, अधोदृष्टि, तिर्यग्-दृष्टि, और पार्श्वदृष्टि भी फलकथन के उपयुक्त मानी गई हैं।

ताजिकशास्त्र के निर्माताओं ने ग्रहों में शुभाशुभत्व को न मानकर विभिन्न प्रकार का दृष्टि-विभाजन किया और दृष्टियों में ही शुभाशुभ फल करने की शक्ति का स्वीकार किया। किन्तु ग्रहों के दीप्तांशों के अन्दर होनेवाली दृष्टियों का विशेष फल और द्रष्टा-दृश्य में दीप्तांशों के अनन्तर बारह अंशपर्यन्त अन्तर रहने तक उन दृष्टियों का मध्यम फल माना। इस प्रकार दृष्टियों के

फल का अवधिकाल निश्चित किया, जिससे फलवक्ताओं को फलकथन में कुछ सुविधा हो गई। इसके अतिरिक्त जातकशास्त्र में जब कोई दो ग्रह एक राशि में स्थित होते हैं, तब दृष्टि का अभाव बतलाया है, वहाँ भी इन लोगों ने पूर्णदृष्टि को माना और उसे कुछ विद्वान् शुभ और कुछ अशुभ कहने लगे। इस मतभेद का कारण क्या है? यह उनके ग्रन्थों से सन्तोषप्रद सिद्ध नहीं होता। जो हो, किन्तु उन लोगों की ग्रहों के दीप्तांशानुसार दृष्टियों के शुभाशुभ फल की अवधि-कल्पना अवश्य कुछ सूक्ष्म और विशेष फलदायी प्रतीत होने से, ताजिकशास्त्र के मन्तव्यों का मान्य भी संसार ने किया।

ताजिकशास्त्रवालों की तरह पश्चिमीय विद्वानों ने कुछ अन्य दृष्टियाँ भी फलादेश के लिये निर्माण कीं और उन दृष्टियों में ही शुभाशुभत्व की कल्पना की। साथ ही फलकाल की अवधि जानने के लिये, ग्रहों और उन दृष्टियों के दीप्तांश भी स्थिर किये, जिन से फलवक्ता विद्वानों को फलकथन में विशेष सफलता मिलने लगी। इतना ही नहीं, किन्तु पाश्चात्य पञ्चाङ्गकारों ने एस्पेक्टेरियन (दृष्टियोग) शीर्षक देकर, प्रतिदिन होनेवाली ग्रहों की अंशान्तरात्मक दृष्टियों का समय आदि निश्चित करके फलवक्ताओं का बहुत बड़ा उपकार किया। इधर कुछ समय से भारतवर्ष में भी गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल तथा उत्तरप्रदेश के बम्बई, अहमदाबाद, पूना, कलकत्ता, उज्जैन आदि नगरों

से प्रकाशित होनेवाले पञ्चाङ्गों में भी उक्त दृष्टियोगों का उल्लेख होने लगा है; यह हर्ष का विषय है।

इस में सन्देह नहीं कि, यह अंशान्तरवाले दृष्टियोग सूक्ष्मातिसूक्ष्म फल के द्योतक हैं, जिन की संख्या अबतक १२ या १५ के लगभग पहुंच चुकी है। इन दृष्टियोगों के आधार पर किये गये निर्णय अधिकांश सफल होते हैं। हाँ, कभी कभी ऐसी परिस्थिति भी देखी गई है कि, इन दृष्टियोगों के विपरीत ही फल घटित हो जाया करता है। अतएव यह प्रश्न स्वयमेव उठता है कि, अबतक व्यवहार में लाये जानेवाले इन स्वल्पसंख्यक दृष्टियोगों के अतिरिक्त कुछ और भी ऐसे दृष्टियोग हैं जिन का पता न होने से निर्णय में भूलें हुआ करती हैं और कुछ का कुछ फल हो जाता है। एतदर्थ यदि भचक्र (राशिमण्डल) का कोई सयुक्तिक अंशान्तरात्मक विभाजन कर लिया जाय, तो यह समस्या सरलता से हल हो सकती है।

हमारी समझ से पूर्वाचार्यों ने जैसे एकराशि में ही अंशात्मक विभाजन करके सप्तवर्गी, दशवर्गी द्वादशवर्गी, षोडशवर्गी आदि की व्यवस्था की और उनके द्वारा सूक्ष्मातिसूक्ष्म फलकथन की युक्तियाँ निकाली हैं, वैसे ही भचक्र को पूर्ण (एक) मान कर उसके द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ आदि विभाग कर लिये जांय, तो वर्तमान में प्रचलित दृष्टियोगों की अपेक्षा कुछ अधिक संख्या में अंशान्तरवाले दृष्टियोग हो सकते हैं, जिनसे फलकथन में

और भी अधिक सफलता मिल सकती है। तदनुसार भचक का सयुक्तिक अंशान्तरात्मक विभाजन निम्नलिखित है।

संख्या	विभाग	अंशांतर	संख्या	विभाग	अंशांतर
१	पूर्ण वा एक	०	२०	षष्ठ्यंश	६
२	द्वितीयांश	१८०	२१	षष्ठ्यंशरहित	१७४
३	तृतीयांश	१२०	२२	अष्टाचत्वारिंशांश-	
४	चतुर्थांश	९०		रहित	१७२°।३०′
५	पञ्चमांश	७२	२३	चत्वारिंशांशरहित	१७१
६	षष्ठांश	६०	२४	द्वात्रिंशांशरहित-	
७	सप्तमांश	५१°।२६′			१६८°।४५′
८	अष्टमांश	४५	२५	चतुर्विंशांशरहित	१६५
९	नवमांश	४०	२६	विंशांशरहित	१६२
१०	दशमांश	३६	२७	अष्टादशांशरहित	१६०
११	एकादशांश	३२°।४४′	२८	षोडशांशरहित	१५७°।३०′
१२	द्वादशांश	३०	२९	द्वादशांशरहित	१५०
१३	षोडशांश	२२°।३०′	३०	एकादशांशरहित	
१४	अष्टादशांश	२०			१४७°।१६′
१५	विंशांश	१८	३१	दशमांशरहित	१४४
१६	चतुर्विंशांश	१५	३२	नवमांशरहित	१४०
१७	द्वात्रिंशांश	११°।१५′	३३	अष्टमांशरहित	१३५
१८	चत्वारिंशांश	९	३४	सप्तमांशरहित	१२८°।३४
१९	अष्टाचत्वारिंशांश	७°।३०′	३५	पञ्चमांशरहित	१०८

इन के अतिरिक्त षष्ठांश, चतुर्थांश, तृतीयांश तथा द्वितीयांश से रहित दृष्टियां क्रम से १२०, ९०, ६० और ० शून्य अंशान्तरवाली ही होती हैं, जो गणना में आ चुकी हैं।

भचक की पूर्वोक्त अंशान्तरात्मक दृष्टियों के अतिरिक्त दृश्य चक्रार्ध में ग्रहों का पांचबार नवांशयुतिनामक दृष्टियोग भी हुआ करता है। पहिली नवांशयुति तब होती है, जब कि राशिमण्डल की किसी एक ही राशि में दो ग्रहों का अन्तर शून्य होता है। दूसरी नवांशयुति ४० अंश के अन्तर पर, तीसरी नवांशयुति ८० अंश के अन्तर पर, चौथी नवांशयुति १२० अंश के अन्तर पर और पाँचवीं नवांशयुति १६० अंश के अन्तर पर हुआ करती है।

उपरिनिर्दिष्ट राशिमण्डलसम्बन्धी अंशान्तरवाले दृष्टियोगों के अतिरिक्त एक और दृष्टियोग होता है, जिसे 'क्रान्त्यंशसाम्य' कहते हैं। यह दृष्टियोग तब होता है, जब किन्हीं दो ग्रहों की क्रान्ति के अंशों में समानता होती है, भले ही वे दोनों ग्रह किसी एक (उत्तर वा दक्षिण) अथवा भिन्न भिन्न क्रान्ति में क्यों न हों?

इन दृष्टियोगों के जानने की सरल युक्ति यह है कि, भचक की बारह राशियों के (प्रत्येक राशि के तीस अंश के हिसाब से) कुल ३६० अंश होते हैं। किसी भी इष्टकाल पर प्रत्येक ग्रह और भाव के स्पष्ट राशि, अंश, कला और विकला तैयार हो जाने पर यह सहज ही जाना जा सकता है कि, किन्हीं दो ग्रहों

या भावों के बीच कितना अन्तर है ? वह अन्तर अधिक से अधिक १८० अंशों तक हुआ करता है-शून्य अंश से क्रमशः बढ़ता हुआ १८० अंशों तक पहुँचता है। बाद में उसी क्रम से घटता घटता फिर शून्य अंश तक का ही अन्तर रह जाता है। जहाँ ३६० अंश की पूर्ति होती है, वहाँ शून्य ० लिखने की परिपाटी है। जब कभी किन्हीं दो ग्रहों में कितना अन्तर है ? यह जानना अभीष्ट हो, तब अंशान्तर की गणना राशि या स्थान से न करके द्रष्टा और दृश्य ग्रहों के अंशों से ही करना चाहिये।

दृष्टियों के दीप्तांश।

भचक्र के सयुक्तिक विभाजन के द्वारा निर्माण की हुई सभी दृष्टियों का प्रभावकाल जानने के लिये, वाणिज्यकार्य के उपयुक्त निर्भ्रान्त दीप्तांशों का निश्चित कर लेना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है। क्यों कि, अबतक ग्रहों और दृष्टियों के दीप्तांशों की जो विभिन्न कल्पनाएँ दृष्टिगोचर हो रही हैं, वे भले ही राष्ट्र, देश वा किसी व्यक्तिविशेष के फलादेश के लिये उपयुक्त समझी जा रही हों, किन्तु वाणिज्यसम्बन्धी फलाफल का विचार करने में निर्णयकर्ताको उनके कारण कभी कभी महान् व्यामोह होता है— फल की अवधि यथार्थ नहीं मिलती। वे दीप्तांश बहुधा विफल हो जाते हैं।

वैसे तो फलादेश के ग्रन्थों में, सभी ग्रहों में अर्थलाभ कराने की सामर्थ्य का वर्णन पाया जाता है; किन्तु केवल बुध के फल-

कथन में ही यह स्पष्टरूप से लिखा मिलता है कि– बुध वाणिज्य के द्वारा अर्थलाभ करानेवाला है।" दूसरी बात यह भी है कि, आजकल के व्यापार-क्रम को देखते हुए (जिस में वस्तु का लेन देन बहुत कम होता है और वायदे के सौदे करके, हानि-लाभ की रकम का ही बहुधा लेन देन होता है) बुध ही वाणी (वायदा) और लेख्य (कण्ट्राक्ट) का स्वामी ग्रह है; इस कारण भी जहां पर ग्रहों की पूर्णदृष्टि होती है, वहां पर व्यापारी वस्तुओं के फल-निर्णय के लिये बुध के जो ७ सात दीप्तांश बहुसम्मत हैं, वे ही मान लिये जांय, और अन्य दृष्टियोंमें त्रैराशिक की रीति से दीप्तांशों को स्थिर कर लिया जाय तो सभी शुभाशुभ फल करने-वाली दृष्टियों का निर्भ्रान्त (यथार्थ) प्रभावकाल मिल जायगा। इसी आधार पर–इन्हीं दीप्तांशों के द्वारा वर्षों निर्णय करने पर फलकाल की सत्यता प्रमाणित भी हो चुकी है। साथ ही यह भी देखा गया है कि दृष्टि-दीप्तांशों को दो भागों में विभक्त करने पर, कभी पीहले अर्धभाग के तुल्य अंशान्तर की अवधि में तो कभी बाद में और कभी आगे पीछे दोनों तरफ की अंशान्तरात्मक अवधि में ग्रहों का दृष्टिजन्य शुभाशुभ फल हुआ करता है। एतदर्थ प्रत्येक दृष्टि के दीप्तांश और उसके अर्धभाग का बोधक एक चक्र यहां पर दिया जाता है, जिससे प्रत्येक दृष्टि योग के प्रभावकाल की विभिन्नता स्पष्ट प्रतीत हो जायगी।

दृष्टि-दीप्तांश-बोधक चक्र।

संख्या दृष्टिनाम	अंशान्तर	दीप्तांश	अर्धभाग
१ पूर्ण वा एक	०।०'	७।०'।०"	३।३०'।०"

संख्या दृष्टिनाम	अंशान्तर	दीप्तांश	अर्धभाग
२ प्रतियोग वा पूर्ण	१८०°।०'	७°।०'।०"	३°।३०'।०"
३ त्रिकोण	१२०°।०'	४°।४०'।०"	२°।२०'।०"
४ केन्द्र	९०°।०'	३°।३०'।०"	१°।४५'।०"
५ पञ्चमांश	७२°।०'	२°।४८'।०"	१°।२४'।०"
६ षष्ठांश वा त्रिरेकादश	६०°।०'	२°।२०'।०"	१°।१०'।०"
७ सप्तमांश	५१°।२६'	२°।०'।०"	१°।०'।०"
८ अष्टमांश वा केन्द्रार्ध	४५°।०'	१°।४५'।०"	०°।५२'।३०"
९ नवमांश	४०°।०'	१°।३३'।२०"	०°।४६'।४०"
१० दशमांश	३६°।०'	१°।२४'।०"	०°।४२'।०"
११ एकादशांश	३२°।४४'	१°।१७'।०"	०°।३८'।३०"
१२ द्वादशांश	३०°।०'	१°।१०'।०"	०°।३५'।०"
१३ षोडशांश	२२°।३०'	०°।५२'।३०"	०°।२६'।१५"
१४ अष्टादशांश	२०°।०'	०°।४६'।४०"	०°।२३'।२०"
१५ विंशांश	१८°।०'	०°।४२'।०"	०°।२१'।०"
१६ चतुर्विंशांश	१५°।०'	०°।३५'।०"	०°।१७'।३०"
१७ द्वात्रिंशांश	११°।१५	०°।२६'।१५"	०।१३'।७"।३०'''
१८ चत्वारिंशांश	९°।०'	०°।२१'।०"	०°।१०'।३०"
१९ अष्टाचत्वारिंशांश	७°।३०'	०°।१७'।३०"	०°।८'।४५"
२० षष्ठ्यंश	६°।०'	०।१४'।०"	०°।७'।०"
२१ षष्ठ्यंशरहित	१७४°।०'	६°।४६'।०"	३°।२३'।०"
२२ अष्टाचत्वारिंशांशरहित	१७२°।३०'	६°।४२'।३०"	३°।२१'।१५"

संख्या दृष्टिनाम	अंशान्तर	दीप्तांश	अर्धभाग
२३ चत्वारिंशांशरहित	१७१°।०'	६°।३९'।०"	३°।१९'।३०"
२४ द्वात्रिंशांशरहित	१६८°।४५'	६°।३३'।४५"	३°।१६'।५२"।३०'''
२५ चतुर्विंशांशरहित	१६५°।०'	६°।२५'।०"	३°।१२'।३०"
२६ विंशांशरहित	१६२°।०'	६°।१८'।०"	३°।९'।०"
२७ अष्टादशांशरहित	१६०°।०'	६°।१३'।२०"	३°।६'।४०"
२८ षोडशांशरहित	१५७°।३०'	६°।७'।३०"	३°।३'।४५"
२९ द्वादशांशरहित	१५०°।०'	५°।५०'।०"	२°।२५'।०"
३० एकादशांशरहित	१४७°।१६'	५°।४३'।०"	२°।५१'।३०"
३१ दशमांशरहित	१४४°।०'	५°।३६'।०"	२°।४८'।०"
३२ नवमांशरहित	१४०°।०'	५°।२६'।४०'	२°।४३'।२०"
३३ अष्टमांशरहित	१३५°।०'	५°।१५'।०"	२°।३७'।३०"
३४ सप्तमांशरहित	१२८°।३४'	५°।०'।०"	२°।३०'।०"
३५ पञ्चमांशरहित	१०८°।०'	४°।४२'।०"	२°।२१'।०"
३६ प्रथम-नवांशयुति	०°।०'	०°।७'।४६"।४०'''	०°।३',५३"२०'''
३७ द्वितीय-नवांशयुति	४०°।०'	०°।७'।४६"।४०'''	०°।३'।५३"।२०'''
३८ तृतीय-नवांशयुति	८०°।०'	०°।७'।४६"।४०'''	०°।३'।५३"।२०'''
३९ चतुर्थ-नवांशयुति	१२०°।	०°।७'।४६"।४०'''	०°।३'।५३"।२०'''

संख्या दृष्टिनाम	अंशान्तर	दीप्तांश	अर्धभाग
४० पञ्चम-नवांशयुति	१६०°|०'	०°|७'|४६"|४०'''	०°|३'|५३"|२०'''

अब रही 'क्रान्त्यंशसाम्य' के दीप्तांश की बात। इस सम्बन्ध में पश्चिम देशवासी विद्वानों ने १ अंश का दीप्तांश माना है। यदि क्रान्तिका एक अंश लिया जाय तो क्रान्ति-गति के हिसाब से मन्दगतिवाले ग्रहों का यह दृष्टियोग महीनों और वर्षों तक अपना प्रभाव रखने के कारण व्यापारी वस्तुओं के फलादेश में अनुपयुक्त हो जाता है। क्योंकि, व्यापारकार्य में महिनों तो क्या कुछ दिनों तक भी वस्तुओं का एकतरफा भाव नहीं रहता—वह बराबर घटता बढ़ता रहता है। और यदि राशिमण्डलचारी मन्दगति ग्रहों का यह एक अंश लिया जाय, तब भी वह ग्रह अधिक समय तक अपना प्रभाव रख सकता है, इसलिये राशिभोग का एक अंश भी अनुपयोगी हो जाता है। यदि दोनों (क्रान्तिगति वा राशिभोग) में से किसी के एक अंशस्वरूप दीप्तांश को भी अन्य दृष्टियों के दीप्तांशों के अर्धभाग की तरह दो भागों में विभक्त कर लिया जाय, तो प्रभावकाल यद्यपि कुछ न्यून अवश्य हो सकता है, फिर भी वह अवधि भी बहुत लम्बी हो जाती है। इसलिये वस्तुस्थिति को देखते हुए यह उचित प्रतीत होता है कि, जिन दो ग्रहों में यह दृष्टिसम्बन्ध हो रहा हो, उनकी उस समय जो परमक्रान्ति हो, उसके अनुपात से जो कलात्मक प्रभावकाल

प्राप्त हो, उतनी ही राशिमण्डलचारी ग्रहों की यदि कलात्मक दैनिक गति हो तो गति-कलाओं के अर्धभाग में और यदि विकलात्मक दैनिक गति हो तो गति-विकलाओं के अर्धभाग में प्रभावकाल की सत्ता मानली जाय, तो बहुत कम अवधि होगी और वह वास्तव में अतीव उपयोगी होगी। जिस समय ग्रहों की परमक्रान्ति और भी कम होगी, उस समय इससे भी न्यून समय का प्रभावकाल होगा।

इस दृष्टियोग की यह भी एक विशेषता है कि, जिस समय जिन दो ग्रहों का यह दृष्टियोग होता है, उस समय उन दोनों ग्रहों का यदि कोई राशिमण्डलसम्बन्धी अंशान्तरवाला दृष्टियोग न होगा, तब युति का ही फल होता है। अन्यथा राशिचक्रमें होनेवाले अंशान्तरात्मक दृष्टियोग के फल को ही यह दृष्टियोग तीव्र (प्रबल) रूप दे देता है। किन्तु प्रभावकाल उस दृष्टियोग का न होकर 'क्रान्त्यंशसाम्य' का ही होगा। और फल भी दृष्टि करनेवाले दोनों ग्रहों में से जो ग्रह जय-पराजय के नियमानुसार विजयी होगा, उसी का होगा। जहाँ पर जय-पराजय का नियम लागू नहीं होगा, वहाँ पर दोनों ही ग्रह अपने अपने दीप्तांशों के अनुसार जितना प्रभावकाल प्राप्त होगा, उतनी अवधि में अपना अपना फल आगे या पीछे अथवा साथसाथ करेंगे।

अंशान्तरात्मक दृष्टियोगों का सामान्य शुभाशुभत्व।

संख्या	दृष्टिनाम	अंशान्तर	शुभाशुभत्व	विशेष विवरण
१	संयोग वा युति	०°।०'	शुभाशुभ	ग्रहधर्मानुसार।
२	प्रतियोग	१८०°।०'	,,	,,
३	त्रिकोण	१२०°।०'	शुभ	
४	केन्द्र	९०°।०'	अशुभ	
५	पञ्चमांश	७२।०'	शुभाशुभ,	त्रिरेकादश वा केन्द्रानुसार
६	षष्ठांश	६०°।०'	शुभ	
७	सप्तमांश	५१°।२६'	शुभाशुभ,	द्विर्द्वादश वा त्रिरेकादशानुसार
८	अष्टमांश	४५°।०'	,,	,,
९	नवमांश	४०°।०'	,,	,, ,,
१०	दशमांश	३६°।०'	,,	,, ,,
११	एकादशांश	३२°।४४'	,,	,, ,,
१२	द्वादशांश	३०°।०'	शुभाशुभ	द्विर्द्वादशानुसार
१३	षोडशांश	२२°।३०'	अशुभ	
१४	अष्टादशांश	२०°।०'	शुभ	
१५	विंशांश	१८°।०'	,,	
१६	चतुर्विंशांश	१५°।०'	,,	
१७	द्वात्रिंशांश	११°।१५'	अशुभ	

संख्या	दृष्टिनाम	अंशान्तर	शुभाशुभत्व	विशेष विवरण
१८	चत्वारिंशांश	९°।०'	शुभ	
१९	अष्टाचत्वारिंशांश	७°।३०'	,,	
२०	षष्ट्यंश	६°।०'	,,	
२१	षष्ठ्यंशरहित	१४४°।०'	अशुभ	
२२	अष्टाचत्वरिंशांशरहित	१७२°।३०'	,,	
२३	चत्वारिंशांशरहित	१७१°।०'	,,	
२४	द्वात्रिंशांशरहित	१६८°।४५'	शुभ	
२५	चतुर्विंशांशरहित	१६५°।०'	अशुभ	
२६	विंशांशरहित	१६२°।०'	,,	
२७	अष्टादशांशरहित	१६०°।०'	,,	
२८	षोडशांशरहित	१५७°।३०'	,,	
२९	द्वादशांशरहित	१५०°।०'	शुभाशुभ	षडष्टकके अनुसार
३०	एकादशांशरहित	१४७°।१६'	,,	,, ,,
३१	दशमांशरहित	१४४°।०'	,,	,, ,,
३२	नवमांशरहित	१४०°।०'	,,	,, ,,
३३	अष्टमांशरहित	१३५°।०'	,,	त्रिकोण वा षडष्टक के अनुसार
३४	सप्तमांशरहित	१२८°।३४'	,,	,, ,,
३५	पञ्चमांशरहित	१०८°।०'	,,	केन्द्र वा त्रिकोण के अनुसार

संख्या	दृष्टिनाम	अंशान्तर	शुभाशुभत्व विशेष विवरण
३६	प्रथम नवांशयुति	०°।०'	शुभाशुभ, जय-पराजय के नियम, शुभाशुभ ग्रह या दृष्टि के अनुसार
३७	द्वितीय नवांशयुति	४०°।०'	,, ,,
३८	तृतीय नवांशयुति	८०°।०'	,, ,,
३९	चतुर्थ नवांशयुति	१२०°।०'	,, ,,
४०	पञ्चम नवांशयुति	१६०°।०'	,, ,,

ऊपर लिखे हुए दृष्टियोगों का यह शुभाशुभत्व भी सामान्य है। क्योंकि, कभी कभी दृष्टिकर्ता ग्रहों के चतुर्विध सम्बन्ध या राजयोगादि कारणों से उक्त दृष्टियों के शुभाशुभत्व में भी उलट-फेर हो जाता है। यही बात आगे के प्रकरण में विशेषरूप से से स्पष्ट कर दी गई है।

जय-पराजय का नियम।

राशियुति, नवांशयुति और क्रान्त्यंशसाम्य में जब भिन्नधर्मी ग्रह होते हैं, तब जय-पराजय का नियम लागू होता है। दो ग्रहों में से जो ग्रह उस समय उत्तर शर में होता है, वह विजयी और जो दक्षिण शर में होता है, वह पराजित माना जाता है। दोनों ही उत्तर शर में हों, तो जो अधिकांशी होगा, वह विजयी होगा। और जब दोनों ग्रह दक्षिण शर में हों, तब न्यून अंश-वाला ग्रह विजयी होगा।

दृष्टियोगों के शुभाशुभत्व का कारणसहित विशदीकरण।

संयोग या युति। अंशान्तर ०

यह दृष्टियोग तीन तरह से होता है। १ राशि-युति २ नवांश-युति और ३ क्रान्त्यंशों की समानता। ये तीनों ही समकोटि के दृष्टियोग हैं। किन्तु अपने अपने दीप्तांशों के अनुसार प्रत्येक का प्रभावकाल भिन्न भिन्न होता है। पूर्व-कथित ग्रहों के शुभाशुभत्व-बोधक प्रकरण के द्वारा निश्चित किये हुए किन्हीं दो शुभग्रहों की जब कोई युति होती है, तब सर्वदा शुभफल ही उस युति का हुआ करता है। जब एक शुभग्रह और दूसरा अशुभग्रह कोई युति करते हैं, तब उनमें से जो ग्रह जयपराजय के नियमानुसार विजयी होता है, उसी का शुभ या अशुभफल हुआ करता है, पराजित ग्रह का नहीं। और जब दोनों अशुभग्रह किसी युति को करते हैं, तब सर्वदा अशुभ फल ही हुआ करता है। शुभफल से वस्तु के मूल्य में तेजी, और अशुभफल से मंदी समझना चाहिये।

प्रतियोग (पूर्ण) दृष्टि। अंशान्तर १८०

इस दृष्टियोग के विषय में पश्चिमीय एवं भारतीय विद्वानों में मतभेद है। पश्चिमदेशवासी इस दृष्टियोग को अशुभ मानते हैं, किन्तु भारतीय विद्वानों का कहना है कि—जब किन्हीं दो शुभग्रहों में परस्पर यह पूर्णदृष्टि होती है, तब विशेष शुभफल होता है। जब दृष्टि करने वाले ग्रहों में से एक शुभग्रह और दूसरा

अशुभग्रह हो और उनमें से अशुभग्रह दृश्य एवं शुभग्रह द्रष्टा हो, तब साधारण शुभफल होता है। इसके विपरीत यदि शुभग्रह दृश्य और अशुभग्रह द्रष्टा हो, तब साधारण अशुभफल हुआ करता है। और जिस समय दो अशुभग्रह परस्पर पूर्णदृष्टि करते हैं; उस समय इस दृष्टियोग का विशेष अशुभफल होता है।

यहां पर एक प्रश्न उठता है कि, जब दोनों ही ग्रह परस्पर द्रष्टा और दृश्य इस दृष्टियोग में होते हैं, तब कौनसा ग्रह द्रष्टा और कौनसा ग्रह दृश्य माना जायगा? भारतीय विद्वानों ने यह समस्या बड़ी ही सरलता से इस प्रकार सुलझा दी है कि, ऐसी अवस्था में वस्तु की लग्न से छठे स्थानतक में रहनेवाला ग्रह दृश्य और सप्तम स्थान से बारहवें स्थानतक में रहनेवाला ग्रह द्रष्टा होता है और फल दृश्य ग्रह पर निर्भर है।

त्रिकोणदृष्टि। अंशान्तर १२०

शुभाशुभ दोनों प्रकार के ग्रहों का यह दृष्टियोग सर्वदा शुभफल करता है। किन्तु इष्टकाल पर यदि नवांशयुति हो रही हो, तो उसके अनुसार शुभ वा अशुभफल होता है। नवांशयुति के अभाव में त्रिकोणदृष्टि का ही फल हुआ करता है।

केन्द्रदृष्टि। अंशान्तर ९०

पश्चिमीय विद्वान् इस दृष्टियोग को अशुभ मानते हैं। किन्तु भारतीय विद्वान् ऐसा नहीं मानते। इनके मत में पूर्वोक्त ग्रह के शुभाशुभ प्रकरण के द्वारा किसी वस्तु के फलाफल-निर्णय

में यदि शनि और मङ्गल शुभग्रह सिद्ध हुए हों, और उन दोनों में मंगल से चतुर्थस्थान में ९० अंशों की दूरी पर शनि स्थित हो, तो ऐसी स्थिति में साधारणतः केन्द्रदृष्टि के होते हुए भी दृष्टिसम्बन्धी विशेष नियम से वह केन्द्रदृष्टि नहीं, प्रत्युत पूर्णदृष्टि ही मानी जाती है। अतएव ऐसी स्थिति के इस केन्द्रनामक दृष्टियोग का फल भी शुभ ही होता है। इसके विपरीत यदि शनि से मङ्गल चौथे स्थान में ९० अंशों की दूरी पर हो, तो अन्य ग्रहों की तरह केन्द्रदृष्टि का अशुभफल ही होता है।

पञ्चमांशदृष्टि। अंशान्तर ७२

स्थूलरूप से यह दृष्टियोग जब दो ग्रह एक दूसरे से तीसरे या ग्यारहवें स्थान में अथवा चौथे या दसवें स्थान में स्थित होते हैं, तब होता है। तीसरे या ग्यारहवें स्थान में स्थित ग्रहों का फल तो शुभ ही होता है, किन्तु चौथे या दसवें स्थान में स्थित ग्रहों के इस दृष्टियोग में यदि दृष्टिकर्ता दोनों ग्रह शुभ होते हैं, तब साधारण शुभफल अन्यथा साधारण अशुभफल होता है।

षष्ठांश वा त्रिरेकादश। अंशान्तर ६०

यों तो सभी ग्रहों का यह दृष्टियोग शुभफल करता है। किन्तु शनि का यह दृष्टिसम्बन्ध अधिक बलवान् होता है। क्योंकि, तीसरे स्थान पर शनि की विशेषरूप से पूर्णदृष्टि होती है। शनि

की इस दृष्टि का फल भी तभी ठीकठीक एवं विशेषमात्रा में होता है, जब कि शनि से तीसरे स्थान में बैठा हुआ ग्रह भी शनि के अंशों के तुल्यांश का होगा। जैसे-वृषराशि में जितने अंश का शनि हो और कर्कराशि में उतने ही अंशों का अन्य ग्रह। इसके विपरीत यदि मीनराशिस्थ ग्रह के साथ वृषराशिस्थ शनि का यह षष्ठांशनामक दृष्टियोग होगा तो बाजार पर साधारण प्रभाव पड़ेगा। किन्तु जिस वस्तु के निर्णयहेतु शनि शुभग्रह सिद्ध होगा, तब वह पूर्वोक्त दोनों स्थितियों में शुभफल ही करेगा। भले ही फल की मात्रा न्यून वा अधिक क्यों न हो? किन्तु यही शनि जिस वस्तु के लिये अशुभग्रह सिद्ध होगा, तो अपने से तीसरे स्थान में स्थितग्रह के साथ होनेवाले इस दृष्टियोग में अशुभफल और अपने से ग्यारहवें स्थान में स्थित ग्रह के साथ इस दृष्टियोग में सामान्य शुभफल करता है।

सप्तमांशदृष्टि। अंशान्तर ५१ अंश २६ कला।

यह दृष्टियोग कभी तो दो ग्रह जब एक दूसरे से दूसरे और बारहवें स्थान में होते हैं, तब होता है। और कभी एक दूसरे से तीसरे और ग्यारहवें स्थान में स्थित होते हैं, तब होता है। जब द्वितीय और द्वादशस्थान में स्थित ग्रहों का यह दृष्टियोग होता है, तब वह 'द्विर्द्वादश' के नियमानुसार कभी शुभफल तो कभी अशुभफल करता है। और जब तीसरे और ग्यारहवें स्थान में स्थित ग्रहों का यह दृष्टियोग होता है, तब शुभफल ही करता

है। किन्तु शनि के साथ होनेवाले इस दृष्टियोग के शुभाशुभ फल का निर्णय षष्ठांशदृष्टि के निर्णयक्रम से करना चाहिये।

अष्टमांश वा केन्द्रार्धदृष्टि। अंशान्तर ४५

पश्चिमीय विद्वानों ने इस दृष्टियोग को केन्द्रार्ध होने से अशुभ माना है। परन्तु हमारी समझ से इस दृष्टियोग का निर्णय भी सप्तमांशदृष्टि की तरह करना चाहिये। क्योंकि, इस दृष्टियोग में भी दृष्टिकर्ता ग्रहों की वैसी ही स्थिति होती है।

नवमांश दृष्टि। अंशान्तर ४०

दशमांश दृष्टि। अंशान्तर ३६

एकादशांश दृष्टि। अंशान्तर ३२ अंश ४४ कला

इन तीनों दृष्टियोगों के शुभाशुभ फल का विचार भी सप्तमांशदृष्टि की तरह करना चाहिये। कारण, यहाँ भी ग्रहों की वैसी ही स्थिति होती है।

द्वादशांश दृष्टि। अंशान्तर ३०

इस दृष्टियोग के शुभाशुभ फल का निर्णय 'द्विर्द्वादश' नियम के अनुसार होता है।

षोडशांशदृष्टि। अंशान्तर २२ अंश ३० कला।

यह दृष्टियोग कभी तो एक ही स्थान में दोनों ग्रह होते हैं तब और कभी दोनों ग्रह एक दूसरे से द्वितीय और द्वादश स्थान

में होते हैं, तब होता है। एक स्थान में अशुभफल और विभिन्न स्थान में 'द्विर्द्वादश' के नियमानुसार शुभ वा अशुभ फल होता है।

अष्टादशांश दृष्टि। अंशान्तर २०

विंशांश दृष्टि। अंशान्तर १८

चतुर्विंशांश दृष्टि। अंशान्तर १५

द्वात्रिंशांश दृष्टि। अंशान्तर ११ अंश १५ कला।

चत्वारिंशांशदृष्टि। अंशान्तर ९

अष्टाचत्वारिंशांशदृष्टि। अंशान्तर ७ अंश ३० कला।

षष्ठ्यंश दृष्टि। अंशान्तर ६

इन दृष्टियोगों में जब दोनों ग्रह एक स्थान में होते हैं, तब शुभ फल करते हैं। केवल द्वात्रिंशांश दृष्टि का ही अशुभ फल होता है। और जब दृष्टिकर्ता दोनों ग्रह एक दूसरे से द्वितीय और द्वादशस्थान में होते हैं, तब 'द्विर्द्वादश' के नियमानुसार शुभ वा अशुभ फल करते हैं।

षष्ठ्यंशरहित दृष्टि। अंशान्तर १७४

अष्टाचत्वारिंशांशरहित दृष्टि। अंशान्तर १७२ अंश ३० कला

चत्वारिंशांशरहित दृष्टि। अंशान्तर १७१

यह तीनों दृष्टियोग जब एक ग्रह से दूसरा ग्रह सप्तम स्थान में होता है, और द्रष्टा-दृश्य दोनों ही शुभ ग्रह होते हैं, तब

तो शुभ फल अन्यथा अशुभ फल होता है। यदि सप्तम स्थान से भिन्न स्थान (छठे या आठवें स्थान) में एक से दूसरा ग्रह होता है, तब शुभाशुभ षडष्टक के अनुसार शुभ वा अशुभ फल होता है।

द्वात्रिंशांशरहितदृष्टि। अंशान्तर १६८ अंश ४५ कला

इस दृष्टियोग में जब एक ग्रह दूसरे से सप्तमस्थान में होता है, तब शुभ फल और भिन्नस्थान में षडष्टक के अनुसार शुभ वा अशुभ फल होता है।

चतुर्विंशांशरहितदृष्टि। अंशान्तर १६५

विंशांशरहितदृष्टि। अंशान्तर १६२

अष्टादशांशरहित दृष्टि। अंशान्तर १६०

इन तीनों दृष्टियोगों में जब एक ग्रह दूसरे से सप्तमस्थान में होता है, तब अशुभ फल और भिन्नस्थान में होता है, तब षडष्टक के नियमानुसार शुभ व अशुभ फल होता है।

षोडशांशरहितदृष्टि। अंशान्तर १५७ अंश ३० कला

एक ग्रह से दूसरा ग्रह सप्तम स्थान में होता है, तब शुभफल और भिन्न स्थान में होता है, तब षडष्टक के नियमानुसार शुभ वा अशुभ फल होता है।

द्वादशांशरहितदृष्टि । अंशान्तर १५०

इस दृष्टियोग में षडष्टक के नियम से शुभ वा अशुभ फल हुआ करता है।

एकादशांशरहितदृष्टि । अंशान्तर १४७ अंश १६ कला

दशमांशरहित दृष्टि । अंशान्तर १४४

नवमांशरहित दृष्टि । अंशातर १४०

अष्टमांशरहित दृष्टि । अंशान्तर १३५

सप्तमांशरहितदृष्टि । अंशान्तर १२८ अंश ३४ कला।

यह पांचों दृष्टियोग जब षडष्टक में होते हैं, तब तो षडष्टक के नियमानुसार शुभ वा अशुभ फल होता है। परन्तु जब वे दृष्टियोग त्रिकोण में होते हैं, तब शुभ फल ही हुआ करता है।

पञ्चमांशरहित दृष्टि । अंशान्तर १०८

यह दृष्टियोग जब केन्द्र में होता है, तब अशुभ फल और जब त्रिकोण में होता है, तब शुभ फल होता है।

निर्णयोपयोगी शुभाशुभ द्विर्द्वादश तथा षडष्टक निम्न-लिखित हैं।

शुभ द्विर्द्वादश

मीन वृष कर्क सिंह कन्या वृश्चिक मकर
मेष मिथुन सिंह कन्या तुला धन कुम्भ

अशुभ द्विर्द्वादश

मेष मिथुन तुला धन कुम्भ
वृष कर्क वृश्चिक मकर मीन

शुभ षडष्टक

मेष मिथुन सिंह तुला धन कुम्भ
वृश्चिक मकर मीन वृष कर्क कन्या

अशुभ षडष्टक

मेष मिथुन सिंह तुला धन कुम्भ
कन्या वृश्चिक मकर मीन वृष कर्क

यहांतक दृष्टियोगों के विषय में आवश्यक और ज्ञातव्य विषयों का जहांतक हो सका है, सविस्तर विशदीकरण किया गया है। इसके आगे ग्रहों के सम्बन्ध में भी शास्त्रीय विशेष मन्तव्यों का दिग्दर्शन किया जाता है।

ग्रह तीन प्रकार के होते हैं। १ बिम्बग्रह २ ताराग्रह और ३ तमोग्रह। जिनमें सूर्य तथा चन्द्र बिम्बग्रह, मङ्गल-बुध-गुरु-शुक्र और शनि; यह पांच ताराग्रह और राहु-केतु तमोग्रह कहे जाते हैं।

सूर्य के साथ एक राशि में या द्विर्द्वादश स्थान में जब कोई ग्रह गणितशास्त्र में बतलाये हुए कालांशों के अन्तर्गत होता है- सूर्यमण्डल में छिप जाता है, तब वह अस्त और सूर्य से पराजित माना जाता है। ऐसी दशा में सूर्य की ही प्रधानता रहती है।

जब वह कालांशों से निकल जाता है—सूर्यमण्डल से पृथक् हो जाता है; तब वह ग्रह उदित समझा जाता है। फिर भी सूर्य के समीप रहने के कारण निस्तेजसा बलहीन होता है।

चन्द्र के साथ जब भौमादि ताराग्रहों की एकराशि में युति होती है, उसे 'समागम' कहते हैं। समागम में जो ग्रह उत्तर दिशा होता है, वह विजयी और दक्षिण दिशा में रहनेवाला पराजित माना जाता है।

भौमादि पांच ताराग्रहों की जब एकराशि में युति होती है, तब उसे प्राचीन शास्त्रकारों ने 'ग्रह-युद्ध' बतलाया है। ग्रहयुद्ध भी चार प्रकार का है—१ भेद २ उल्लेख ३ अंशुमर्दन और ४ अपसव्य। यह विषय प्राचीन संहिता आदि आर्षग्रन्थों में विस्तार से लिखा गया है। ग्रहयुद्ध में भी उत्तर दिशा में रहनेवाला ग्रह विजयी और दक्षिण दिशा में रहनेवाला पराजित माना जाता है। किन्तु शुक्र को इन ताराग्रहों में सबसे अधिक तेजस्वी होने के कारण दक्षिण दिशा में रहते हुए भी भौमादि अन्य ताराग्रहों से विजय पा जानेवाला बतलाया है। समागम और ग्रहयुद्ध में उत्तर-दक्षिण दिशा का ज्ञान ग्रहों के उत्तर-दक्षिण शरों से होता है।

राहु–केतु के साथ युति होने पर उत्तर-शरवाला ग्रह विजयी और दक्षिण-शरवाला पराजित होता है।

उपरिनिर्दिष्ट शास्त्रीय् मन्तव्य के अतिरिक्त, जयपराजय के विचार में हमारा यह स्थूल अनुभव है कि, जब कभी कोई दो ग्रह भिन्न भिन्न स्वभाव के हों—एक शुभ और दूसरा अशुभ हो और वे किसी राशि या नवांश में युति करते हों अथवा उनके क्रान्त्यंशों की समानता होती हो, तभी जय–पराजय का निश्चय किया जाता है। और जब दोनों ग्रह समान प्रकृति के हों—शुभ हों अथवा अशुभ हों, तब जय-पराजय के विचार की इसलिये आवश्यकता नहीं पड़ती कि, वे दोनों ही शुभ या अशुभ फल किया करते हैं। भले ही वे अपना फल आगे या पीछे क्यों न करें ?

भिन्न भिन्न क्रान्ति में भ्रमण करनेवाले दो ग्रहों में जब क्रान्त्यंशों की समानता होती है, तब उत्तर क्रान्तिवाला ग्रह विजयी और दक्षिण क्रान्तिवाला ग्रह पराजित माना जाता है। और जब एकही उत्तर वा दक्षिण क्रान्ति में दोनों ग्रहों के क्रान्त्यंशों की समानता होती है, तब जय-पराजय के नियमानुसार जो ग्रह विजयी होता है, उसी का फल होता है।

दृष्टियोगों के प्रभावकाल का ज्ञान।

पूर्वोक्त सभी दृष्टियोगों के उत्पादक ग्रहों में एक द्रष्टा और दूसरा दृश्य ग्रह होता है। राशिमण्डल में जो ग्रह पिछली राशियों में होता है, वह द्रष्टा और अगली राशियों में जो ग्रह होता है, वह दृश्य कहलाता है। इन दृष्टियोगों का फल दृश्यग्रह की क्रान्ति-गति के

आधार पर दृष्टियोग होने से आगे, या पीछे दृष्टिदीप्तांशों के अर्धभागतुल्य दोनों ग्रहों में अन्तर जिस समय तक होता है, उतनी अवधि में हुआ करता है।

दृश्यग्रह जब उत्तर क्रान्ति में हो और उसकी उत्तर क्रान्ति की गति बढ़ रही हो, तब वह उस दृष्टियोग के हो जाने के बाद, उस दृष्टि के दीप्तांशों के अर्धभाग के तुल्य अन्तर में जितना समय उसको अपनी गति के अनुसार लगता है, उतने समय तक वह अपना दृष्टिजन्य शुभ वा अशुभ फल करता है। और जब दृश्यग्रह की उत्तर क्रान्ति की गति घट रही हो, तब वह उस दृष्टियोग के होने से पहिले जितना समय प्राप्त हो, उतने समय में उस दृष्टि का शुभ या अशुभ फल किया करता है।

दक्षिण क्रान्ति में दृश्यग्रह हो, तो उत्तर क्रान्ति की गति के नियम से विपरीत प्रभावकाल समझना चाहिये।

जिस समय दृश्यग्रह की उत्तर वा दक्षिण क्रान्ति की गति स्थिर हो—न तो बढ़ रही हो और न घट रही हो, तब वह दृश्यग्रह उस दृष्टि के दीप्तांशों के पूर्वापर दोनों हीं भागों के तुल्य अन्तर में जितना समय लगे, उतने समय तक दृष्टियोग होने से पहिले और बाद में भी अपना अच्छा या बुरा प्रभाव तो रखता है, पर बहुत कम।

ग्रहों के जब समानकोटि के कई दृष्टियोग हों, तब वस्तुराशि के स्वामी (लग्नेश) के साथ होने वाले दृष्टियोग की ही प्रधानता रहती है। उसी दृष्टियोग का अपने प्रभावकाल के अनुसार फल हुआ करता है।

दो समान दृष्टियोगों में वक्रीग्रह के दृष्टियोग की अपेक्षा मार्गी ग्रह का दृष्टियोग बलवान् होता है।

किसी भी राशि में प्रवेश करके, कोई ग्रह जबतक एक अंश का नहीं होता, तब तक वह ग्रह निरंश माना जाता है। उसका कोई भी दृष्टियोग क्यों न हो? वह निष्फल होता है। अथवा विपरीत फल करता है—शुभ दृष्टियोग का तेजी के स्थान में मंदी और अशुभ दृष्टियोग का मंदी के बदले तेजी फल होता है।

अस्त, नीचस्थ तथा वक्रीग्रह के साथ होने वाले दृष्टियोग का फल भी विपरीतही होता है। शुभ दृष्टियोग का अशुभ और अशुभ दृष्टियोग का शुभ फल हुआ करता है।

एकराशिगत ग्रहों में होने वाले दृष्टियोग भी ध्यान में रखने के योग्य हैं। क्योंकि, जब भिन्नराशिस्थ ग्रहों के दृष्टियोगों का अभाव होता है, तब यही छोटे छोटे दृष्टियोग शुभाशुभ फल किया करते हैं।

कभी कभी सावकाश-निरवकाश नियम से भी दृष्टियोगों की प्रबलता, दुर्बलता अथवा बाध्य-बाधक सम्बन्ध के द्वारा मुख्यता निश्चित करके फल—निर्णय किया जाता है।

शर—परिवर्तन का बाजार पर सर्वोपरि प्रभाव।

जब कोई ग्रह उत्तर वा दक्षिण शर में प्रवेश करता है, तब

उसके शरपरिवर्तन-सम्बन्धी प्रभावकाल के अन्दर होनेवाले अंशान्तरात्मक अन्य दृष्टियोगों का कुछ भी महत्व नहीं रहता। उन दिनों शरपरिवर्तन की ही मुख्यता रहती है।

ग्रहों के परमशर का गणितागत मान कभी न्यून और कभी अधिक हुआ करता है। इस कारण हमारे पूर्वाचार्यों ने चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि के उत्तर-दक्षिण शरों का व्यवहारोपयोगी मध्यम मान स्थिर कर दिया है। वह निम्नलिखित है।

ग्रह	उत्तरशर का मध्यम मान	दक्षिणशर का मध्यम मान
चन्द्र	५ अंश १७ कला	५ अंश १२ कला
मङ्गल	६ अंश ३१ कला	६ अंश ४७ कला
बुध	७ अंश ० कला	७ अंश ० कला
गुरु	१ अंश ४० कला	१ अंश ३८ कला
शुक्र	४ अंश २ कला	८ अंश ५५ कला
शनि	२ अंश ५२ कला	२ अंश ५२ कला

हर्शल, नेपच्यून और प्लूटो नाम के नवीन ग्रहों के उत्तर-दक्षिण शरों का मध्यम मान भी क्रम से शनि, गुरु और मंगल के उत्तर-दक्षिण शरों के मध्यममान के समान ही समझना चाहिये। क्योंकि, यह उन्हीं की राशियों के स्वामी हैं।

किसी भी ग्रह के वर्तमान परमशर और मध्यम मान का अन्तर करने पर वर्तमान परमशर और अन्तर में जो न्यूनतम हो, उसे मध्यममान से गुणा करने पर, जो फल प्राप्त हो, उसको कला-

विकलात्मक मान कर, तदनुसार उस ग्रह के शर की दैनिक गति के द्वारा जितना समय उपलब्ध हो, उतने समय तक उस ग्रह के शरपरिवर्तन का प्रभाव रहता है।

शरपरिवर्तन के समय उस ग्रह की स्थानविशेष के साथ एक प्रकार की युति होती है, जो अन्य युतियों से प्रबल एवं निरवकाश होती है। क्योंकि, अन्य युतियों को तो फिर भी अपना फल करने के लिये अवकाश रहता है, किन्तु शरपरिवर्तन को दूसरा समय महीनों और कभी वर्षों तक नहीं मिलता।

बहुधा देखा गया है कि, जब कोई ग्रह उत्तरशर में प्रवेश करता है, तब मंदी और दक्षिणशर में प्रवेश करने पर तेजी करता है। उस समय वह ग्रह यदि वक्री अथवा अस्त-दोष से दूषित होगा, तो विपरीतफल करता है—मंदी की जगह तेजी और तेजी के स्थान में मंदी कर देता है।

ध्यान में रखने के योग्य विशेष नियम।

जिस राशि में जिस वस्तु का आश्रयस्थान हो, वह राशि और उसका स्वामी ग्रह; यह दोनों ही उस वस्तु की घटावढ़ी जानने के मुख्य साधन हैं। वस्तु की राशि को ही उसकी लग्न मानकर, लग्नादि द्वादश भावों के स्वामी ग्रहों का शुभाशुभत्व सामान्य एवं विशेष शास्त्र के नियमों के द्वारा निश्चित करके, लग्न तथा अन्यान्य शुभाशुभ ग्रहों के शुभाशुभ दृष्टिसम्बन्धों के आधार पर प्रत्येक वस्तु की तेजी-मंदी का ठीक ठीक पता लगता है।

समस्त दृष्टिसम्बन्धों का एक निश्चित स्थान होता है, जो ग्रहों की अंशात्मक दूरी पर माना गया है। मन्दगतिवाले ग्रहों के दृष्टियोगों के (दृष्टिसम्बन्धों के) आधार पर प्रत्येक वस्तु की दीर्घकालीन तेजी मंदी और शीघ्रगामी ग्रहों के दृष्टि सम्बन्धों के आधार पर स्वल्पकालीन तेजी मंदी का निरूपण किया जाता है।

ग्रहों के परस्पर जो जो दृष्टि-सम्बन्ध समय समय पर हुआ करते हैं, वे उन दिनों की प्रत्येक वस्तु की गति-विधि (बाजार का भावी रुख) किधर को जा रही है, उसकी पहिले से सूचना देते हैं।

जब ग्रहों के शुभ दृष्टिसम्बन्ध ही लगातार कुछ समय तक चलते रहते हैं, तब अधिक समय तक उसवस्तु के भावों में एकतरफा तेजी चलती है। इसी तरह कुछ समय तक एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा, इस तरह लगातार अशुभ दृष्टिसम्बन्ध ही आते रहते हैं, तब बाजार में उस वस्तु के भावों में एकतरफा मंदी का ही साम्राज्य रहता है। और जब एकसाथ शुभाशुभ दोनों प्रकार के दृष्टिसम्बन्ध होते हैं, तब बाजार अनिश्चित रूप धारण कर लेता है-बाजार में क्षणक्षण में तेजी-मंदी के झोंके आते रहते हैं या एकदम सन्नाटा छाया रहता है। ऐसे अवसर पर बड़ी ही सतर्कता से काम लेना चाहिये।

ग्रहों और दृष्टियों के शुभाशुभत्व एवं उनके प्रभावकाल आदि के नियम-सूत्रों को अच्छी तरह ध्यान में रखकर अभ्यास करने

से थोड़े ही समय में प्रत्येक वस्तु का सही सही भविष्य निर्णयकर्ता की आंखों के सामने नाचने लगेगा और वह अचूक चांसों का पूरा पूरा लाभ उठा सकेगा। साथ ही निर्णयकर्ता यदि ग्रहों के दृष्टिसम्बन्धों के द्वारा राष्ट्रीय भविष्य का ज्ञान भी प्राप्त कर लेगा, तो इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं कि, वह तेजी-मंदी के उन बड़े बड़े झोकों का भी पता लगा सकेगा कि, जो युद्ध, महामारी अथवा हड़ताल आदि के कारण व्यापारी केन्द्रों में अकस्मात् उत्पन्न हो जाते हैं।

यहां तक वस्तुओं की तेजी-मंदी का समय आदि जानने के उपयुक्त आवश्यक साधनों और नियमसूत्रों का उल्लेख किया गया है। इसके आगे निर्णय करने की सरल पद्धति का दिग्दर्शन निर्णयकर्ता की सुविधा के लिये किया जाता है।

तेजी-मंदी जानने की सरल पद्धति।

निर्णयकर्ता को जिस वस्तु की जिस समय की तेजी-मंदी जानना अभीष्ट हो, पहिले उस वस्तु की राशि का निश्चय करे। फिर वस्तु की लग्न से द्वादशभावों के स्वामी ग्रहों का विशेष शास्त्र के अनुसार शुभाशुभत्व स्थिर करे। बाद में स्थानीय इष्टकाल पर सभी ग्रहों का सायनपद्धति से स्पष्ट करके वस्तु की लग्न-कुण्डली में यथास्थान स्थापित करे। साथ ही वे ग्रह जिन जिन नवांशों में हों, उन उन नवांशराशियों में एक नवांशकुण्डली पृथक् लिख कर, उसमें यथास्थान स्थापित करे। नवांशकुण्डली

की लग्न भी वही होती है, जो वस्तु की लग्न होती है। फिर यह देखना चाहिये कि, ऐसे कौनसे दृष्टियोग हैं, जिनका प्रभाव उन ग्रहों की उत्तर वा दक्षिण क्रान्ति की गति के बढ़ने या घटने के कारण दृष्टियोग हो जाने के बाद इष्टकाल पर भी विद्यमान है। इसी प्रकार विद्यमान प्रभाववाले और भावी दृष्टियोगों का भी निश्चय सावधानी से करना चाहिये। इसप्रकार निश्चित किये हुए अतीत, वर्तमान और भावी सभी दृष्टियोगों को क्रम से दोनों कुण्डलियों के नीचे कारणसहित शुभाशुभत्व एवं उनके प्रभावकाल आदि के निर्णय के साथ लिखे। साथ ही यह भी देखले कि, उस समय कोई शरपरिवर्तन आदि विशेष योग तो नहीं हो रहा है कि, जिसके कारण उक्त दृष्टियोगों का प्रभाव नष्ट हो जाता हो। बाद में दृष्टियोगों की प्रबलता वा न्यूनाधिकता के आधार पर उससमय की तेजी-मंदी का विवेचना-सहित सारांशरूप निचोड़ क्या होता है, यह स्पष्टरूप से लिखे। हमारा दृढ़ विश्वास है कि, इसप्रकार किया हुआ निर्णय यदि निर्णयकर्ता की कोई भूल न होगी, तो प्रतिशत सही होगा।

रूई का बाज़ार।

व्यापारियों से यह छिपा नहीं है कि, रूई के बाजार का मुख्य आधार इस समय अमेरिका के बाजार पर निर्भर है। अमेरिका में 'न्यूयार्क' और 'न्यू ओरलिन' यह दो नगर इस व्यापार के केन्द्र माने जाते हैं। अन्य सभी देशों के निवासी यहां के बाजार

की गतिविधि को देखते हुए ही अपने व्यापारकार्य का संचालन करते हैं।

ज्योतिषग्रन्थों की छानबीन करनेपर रूई के स्वामीग्रह और उस पर अपना आधिपत्य रखनेवाली राशि का स्पष्टरूप से उल्लेख नहीं मिलता। कहीं-कहीं आभासमात्र मिलता है कि "सफेद रंग के पदार्थ पर शुक्र और चन्द्र का स्वामित्व है।" इस आधार-सूत्र को लेकर एक भारी अड़चन आ पड़ती है कि इन दोनों में से किसको रूई का स्वामी माना जाय? हमारी समझ से इस प्रश्न का समाधान इस तरह सुगमता से हो जाता है कि, वजन में चन्द्रमा भारी और शुक्र हलका है; इसलिये सफेद रंग के जो पदार्थ वजन में भारी हैं, उनका स्वामी चन्द्रमा और जो पदार्थ वजन में हलके हैं, उनका स्वामी शुक्र है। जैसे—वजन में चांदी भारी है उसका स्वामी चन्द्र और रूई हलकी है, तो उसका स्वामी शुक्र। अब रही राशि की बात! इसके लिये, शुक्र की वृष-तुला राशियों में से तुलाराशि के मान लेने में कई कारण पाये जाते हैं। १ देववाणी—संस्कृतभाषा में रूई के अर्थ में 'तूल' शब्द का प्रयोग किया है। २ तूल या रूई दोनों की नामराशि भी तुला है और व्यापारकार्य में नामराशि की ही प्रधानता बतलाई गई है। ३ शुक्र की वृषराशि में रूई का वाचक कोई शब्द नहीं है; इस कारण भी रूई की तुलाराशि ही स्थिर होती है। अतएव न्यूयार्क टाइम के इष्टकाल पर तुलाराशि और शुक्र आदि ग्रहों के

पारस्परिक दृष्टिसम्बन्धों के द्वारा रूई की तेजी मंदी का निर्णय अभ्यासी के लिये अधिक उपयुक्त होगा।

एतदर्थ कुछ उदाहरण यहां दिये जाते हैं जिनके सहारे बुद्धिमान् निर्णयकर्ता चाहे जिस समय की रूई की तेजी-मंदी का निर्णय सरलता से कर सकेगा।

पूर्वोक्त नियमसूत्रों के आधार पर दीर्घकालीन एवं स्वल्पकालीन कुछ दृष्टियोगों का न्यूयार्क टाइम के अनुसार कारण-सहित विशेष विवरण इस प्रकार है:—

तारीख १ जुलाई सन् १९५० शनिवार। फल-बाजार बंद

१—बुध का उत्तरशर-परिवर्तन। समय प्रातः ६ बजे।

बुध का वर्तमान परमशर १ अंश ४९ कला। बुध के उत्तर परमशर का मध्यममान ७ अंश ० कला। इन दोनों का अन्तर ५ अंश ११ कला है। अन्तर और वर्तमान परमशर में बुध का वर्तमान परमशर ही न्यून है। इसे मध्यममान से गुणा किया तो १२ कला और ४३ विकला, यह प्रभावकाल प्राप्त हुआ, जो बुध के वर्तमान परमशर की गति के हिसाब से ता० २ जुलाई रविवार को प्रातः ९°। १३'। २१" तक रहा। किन्तु ता० १ जुलाई शनिवार को न्यूयार्क का बाजार बन्द था; इसलिये बुध के उत्तरशरपरिवर्तन का फल-मंदी नहीं जानी जा सकी।

२—मङ्गल का दक्षिणशरपरिवर्तन। समय प्रातः ८ बजे।

मङ्गल का वर्तमान परमशर १ अंश १९ कला। मङ्गल के दक्षिण परमशर का मध्यममान ६ अंश ४७ कला। दोनों का

अन्तर ५ अंश २८ कला है। अन्तर और वर्तमान परमशर में मंगल का वर्तमान परमशर ही न्यून है। इसे मंगल के दक्षिणशर के मध्यममान से गुणा किया तो ८ कला और ५४ विकला प्रभावकाल प्राप्त हुआ। जो कि मंगल के वर्तमान परमशर की गति के हिसाब से ता० ८ शनिवार को १३°।२४' तक रहा। तात्पर्य यह कि; मंगल के दक्षिणशरपरिवर्तन की तेजी ता० १ जुलाई शनिवार से ता० ८ जुलाई शनिवार तक निश्चित हुई। तदनुसार न्यूयार्क का बाजार ता० १,२ और ४ जुलाई को बन्द रहा। शेष दिनों में बराबर तेजी रही।

ता ३ जुलाई १९५० सोमवार। फल १९ तेजी

१—शुक्र-गुरु का केन्द्रात्मक दृष्टियोग।

अंशान्तर ९०। समय १२°।५'।

लग्नेश शुक्र की षष्ठेश गुरु के साथ होनेवाली यह केन्द्रदृष्टि अशुभ है। शुक्र शुभ ग्रह और गुरु अशुभ ग्रह है। गुरु द्रष्टा और शुक्र दृश्य ग्रह है। यद्यपि यह दृष्टियोग शुभाशुभ ग्रहों का हो रहा है, तथापि दृष्टि के अशुभ होने से मंदी का सूचक है। किन्तु यह दृष्टियोग गुरु के वक्री होने के कारण विपरीत फल—मंदी के स्थान में तेजी—करनेवाला है। दृश्य ग्रह शुक्र की उत्तर क्रान्ति की गति बढ़ रही है; इसलिये दृष्टियोग हो जाने के बाद, दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग १ अंश ४५ कला के तुल्य अन्तर दोनों ग्रहों

में जितने समय तक रहेगा, उतने समय तक प्रभावकाल होगा। वह समय ता० ३ सोमवार को १२'।५' से ता० ४ मंगलवार को प्रातः ३'।५२' तक है। इसलिये ता० ३ सोमवार में ही इस दृष्टि-योग की तेजी निश्चित हुई और उस दिन तेजी ही रही।

२ शनि और नेपच्यून का द्वादशांश नामक दृष्टियोग।

अंशान्तर ३०। समय १३'।१७'।

केन्द्र-त्रिकोणाधिपति शनि की षष्ठेश नेपच्यून के साथ होनेवाली यह दृष्टि शुभ है। दोनों में द्विर्द्वादशस्थान-सम्बन्ध भी शुभ है। शनि द्रष्टा और नेपच्यून दृश्य ग्रह है। नेपच्यून की दक्षिण क्रान्ति की गति बढ़ रही है; इसलिये दृश्यग्रह नेपच्यून तथा द्रष्टाग्रह शनि में जितने समय तक दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग ३५ कला तुल्य अन्तर रहेगा, उतने समय तक प्रभावकाल होगा। वह समय ता. २५ जून सन् १६५० को प्रातः ७ बजे से ता. ३ जुलाई सोमवार को १२'।५' तक निर्णयक्रम से निश्चित होता है। अतएव इस छोटे से दृष्टियोग की तेजी का इतना अधिक अवधि-काल दोनों ग्रहों के मन्दगति होने के कारण प्राप्त होता है। इन दिनों बाजार बराबर तेज रहा। केवल ता. २६ को मंदी रही। उसका कारण यह था कि, उसदिन लग्नेश की षष्ठेश नेप-च्यून के साथ १३५ अंश की अशुभ दृष्टि हो रही थी।

३—बुध-शनि का पञ्चमांश नामक दृष्टियोग।

अंशान्तर ७२। समय १५'।४५'।

दोनों त्रिकोणाधिपतियों की यह दृष्टि शुभ है। राशिमण्डल में एक दूसरे से तीसरे और ग्यारहवें स्थान में स्थित हैं; इस लिये भी यह दृष्टि शुभ है। तात्पर्य यह कि, शुभ ग्रहों का यह शुभ दृष्टियोग है। दोनों में बुध द्रष्टा और शनि दृश्य है। शनि की उत्तर क्रान्ति की गति घट रही है; इस लिये दोनों ग्रहों में जिस समय इस दृष्टियोग के दीप्तांश के अर्धभाग १ अंश २४ कला के तुल्य अन्तर होगा, उस समय से लेकर इस दृष्टियोग के होने तक शुभ फल— तेजी करेगा। वह समय ता० २ को २३'।४८' से ता० ३ सोमवार को १५'।४५' तक होता है। अत एव ता० ३ सोमवार को तेजी रही।

ता० ५ जुलाई १६५० बुधवार। फल ६ तेजी

१ बुध-हर्शल की राशियुति।

अंशान्तर ०। समय २'।३५'।

दोनों त्रिकोणाधिपतियों की यह संयोग वा युति नाम की शुभ दृष्टि है। दोनों हो शुभ ग्रह हैं। इस दृष्टि योग में द्रष्टा—दृश्य का सम्बन्ध नहीं होता। ऐसी दशा में जय-पराजय के नियमानुसार विजयी ग्रह का निश्चय करना पड़ता है। क्योंकि, विजयी ग्रह का ही फल हुआ करता है। उदाहरण में दोनों ही समानधर्मी

(शुभ ग्रह) हैं; इसलिये जयपराजय का नियम लागू नहीं होगा प्रत्युत दोनों ही दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग ३ अंश ३० कला के तुल्य अन्तर रहने तक अपनी अपनी गति के द्वारा प्राप्त समय के अनुसार क्रान्ति-गति के घटने और बढ़ने के कारण युति होने से पहिले और बाद में उतने समय तक शुभ फल (तेजी) करनेवाले हैं। इन में हर्शल की उत्तर क्रान्ति की गति घट रही है; इसलिये वह दृष्टियोग के होने से पहिले और बुध की उत्तर क्रान्ति की गति बढ़ रही है; इस कारण वह अपना फल दृष्टियोग हो जाने के बाद करेगा। हर्शल का प्रभावकाल ता० ३ सोमवार को ११°।४३'।१७'' से ता० ५ बुधवार को ४°।३५' तक और बुध का समय ता० ५ बुधवार को २°।३५' से ता० ६ गुरुवार को १८°।५४'।२०''तक निश्चित होता है। सारांश यह कि, दोनों ग्रहों के इस दृष्टि योग की ता० ३ सोमवार से ता० ६ गुरुवार तक की तेजी निश्चित हुई और वह सही निकली।

ता० ६ जुलाई १९५० गुरुवार। फल १ तेजी

१—शुक्र—मंगल का त्रिकोण दृष्टि।
अंशान्तर १२०। समय ६°।२२'।

लग्नेश तथा केन्द्रेश दोनों शुभग्रहों का यह शुभ दृष्टियोग है। शुक्र द्रष्टा और मंगल दृश्य ग्रह है। मंगल की दक्षिणक्रान्ति के बढ़ने के कारण, दृष्टियोग होने से पहिले दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग २ अंश २० कला के बराबर अन्तर होने के समय से

लेकर दृष्टियोग होने तक तेजी करनेवाला है। वह समय ता० २ रविवार को १६°।८' से ता० ६ गुरुवार को ६°।२२' तक का प्राप्त होता है। फल यह हुआ कि, ता० २ और ४ को न्यूयार्क का बाजार बंद रहा। ता० ३ तथा ५ को तेजी हुई।

ता० ७ जुलाई १९५० शुक्रवार। फल ४ तेजी

१—सूर्य—नेपच्यून का केन्द्रनामक अशुभ दृष्टियोग।
अंशान्तर ९०। समय २°।१६'।

दोनों ग्रहों में सूर्य आयेश होने से और नेपच्यून षष्ठेश होने से अशुभ है। दृष्टि भी अशुभ है। सूर्य द्रष्टा और नेपच्यून दृश्य है। नेपच्यून की दक्षिणक्रान्ति की गति बढ़ रही है, इसलिये दृष्टियोग होने से पहिले दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग १ अंश ४५ कला के तुल्य अन्तर जिस समय दोनों ग्रहों में होगा, वहां से दृष्टियोग होने तक अशुभफल (मंदी) का सूचक है। वह समय ता० ५ बुधवार को ६°।१२' से ता० ७ शुक्रवार को २°।१६' तक का प्राप्त होता है।

२—बुध—मंगल का केन्द्रनामक दृष्टियोग।
अंशान्तर ९०। समय १८°।२१'।

दोनों शुभ ग्रहों का यह दृष्टियोग अशुभ है। बुध द्रष्टा और मंगल दृश्य है। मंगल की दक्षिणक्रान्ति की गति बढ़ रही है, इसलिये दृष्टियोग के होने से पहिले दृष्टि-दीप्तांश के

अर्धभाग १ अंश ४५ कला का अन्तर जिस समय दोनों ग्रहों में होगा,उस समय से लेकर दृष्टियोग होने के समय तक मंदी करने वाला है। वह समय ता० ६ गुरुवार को १७'।११' से ता० ७ शुक्रवार को १८'।२१' तक है।

इन दोनों दृष्टियोगों का प्रभावकाल ता० ५, ६ और ७ तक मंदी का सूचक था। परन्तु इन दिनों मंगल के दक्षिणशर-परिवर्तन की मुख्यता रहने से मंदी न हो कर तेजी हुई।

ता० १० जुलाई १९५० सोमवार। फल २०० तेजी

१—शुक्र—शनि का केन्द्रनामक दृष्टियोग। अंशान्तर ९०। समय ०'।५८'।

लग्नेश शुक्र और केन्द्र-त्रिकोणाधिपति शनि; दोनों ही शुभग्रह हैं। इनका यह दृष्टियोग सामान्यतः अशुभ है। किन्तु विशेषशास्त्र के नियमानुसार केन्द्र-त्रिकोणाधिपति शनि का लग्नेश शुक्र के साथ एकतर पूर्ण दृष्टिसम्बन्ध होने के कारण यही दृष्टियोग शुभफल करनेवाला हो जाता है। यहां पर विशेषता यह है कि, सामान्यशास्त्र से द्रष्टा शुक्र और दृश्यग्रह शनि होता है, परन्तु विशेषशास्त्र के नियमानुसार द्रष्टा शनि और दृश्यग्रह शुक्र हो जाता है। अतएव शुक्र की उत्तरक्रान्ति की गति के बढ़ने के कारण दृष्टियोग होने के पश्चात् दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग १ अंश ४५ कला-तुल्य अन्तर दोनों ग्रहों में जिस समय होगा, वहां तक तेजी का सूचक है। वह समय ता० १० सोमवार को

०।५८' से ता० ११ मंगलवार को १५'।२४' तक का है। दोनों दिन इस दृष्टियोग की तेजी सही निकली।

२—सूर्य—बुध की राशियुति। अंशान्तर ०। समय २३'।४'

अशुभग्रह आयेश सूर्य के साथ शुभग्रह त्रिकोणेश बुध की एकराशि में यह युति हो रही है। बुध अस्त है। सूर्य की ही प्रधानता है। सूर्य की उत्तर-क्रान्ति की गति घट रही है; इसलिये युति होने से पहिले दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग ३ अंश ३० कला का अन्तर सूर्य और बुध में जिस समय होगा, वहाँ से लेकर युति होने तक मन्दी का सूचक है। वह समय ता० ८ शनिवार को ६'।३४' से ता० १० सोमवार को २३'।४' तक का है। शनिवार तथा रविवार को बाजार बन्द रहा। सोमवार को इस दृष्टियोग का फल मंदी होना चाहिये था। परन्तु उसदिन शुक्र-शनि की पूर्ण दृष्टि और भावी बुध-हर्शल के क्रान्त्यंशसाम्य की प्रबलता होने से मंदी न होकर तेजी हुई।

ता० ११ जुलाई १९५० मंगलवार। फल ६५ तेजी

१—बुध—हर्शल का क्रान्त्यंशसाम्य। अंशान्तर ०। समय ४'।२६'।

दोनों ही त्रिकोणेश हैं। हर्शल पञ्चमेश है तो बुध नवमेश है। दोनों ही वस्तु की तुला-लग्न से दशमस्थान में स्थित हैं। यह

बड़ा राजयोग है। एक त्रिकोणाधिपति का दूसरे त्रिकोणाधिपति से सम्बन्ध होना आशा से अधिक विशेषफलदायक होता है। अतएव यह दृष्टियोग अत्यन्त प्रबल है। यहां पर जयपराजय का नियम इसलिये लागू नहीं होता कि, दोनों ही शुभग्रह हैं। दोनों की उत्तर क्रान्ति की गति घट रही है, इस कारण दृष्टियोग होने से पहिले बुध की स्वाचारिक गति के हिसाब से ता० ११ मंगलवार को ही ०'।२१' से ४'।२६' तक बुध का फलकारक समय होता है। और हर्शल की स्वाचारिक गति के हिसाब से ता० १० सोमवार को १२'।५४' से ता० ११ मंगलवार को ४'।२६' तक हर्शल का फल-कारक समय निश्चित होता है। इस महान दृष्टियोग की विशेष तेजी ता० १० को ही घटित हो चुकी है।

२—शुक्र—शनिका पूर्वांगल केन्द्रनामक दृष्टियोग।
अंशान्तर ६०।

इस दृष्टियोग का विवरण ता० १० जुलाई के निर्णय के साथ हो चुका है। विशेष-शास्त्र के नियमानुसार यह दृष्टियोग तेजी करनेवाला है। प्रभाव-काल ता० ११ मंगलवार को १५'।२४' तक का होने से आज तेजी हुई।

ता० १२ जुलाई १९५० बुधवार। फल २ मंदी
१—बुध—गुरुका अष्टमांशरहित दृष्टियोग।
अंशान्तर १३५। समय १६'।५९'।

बुध त्रिकोणेश होने से शुभ और गुरु तृतीयेश तथा षष्ठेश होने से अशुभ ग्रह है। गुरु द्रष्टा और बुध दृश्य है। स्थूलमान से यह दृष्टियोग त्रिकोण में स्थित ग्रहों का हो रहा है, अतः शुभ है। किन्तु गुरु के वक्री होने के कारण विपरीतफल-तेजी के स्थान में मंदी करनेवाला है। दृश्यग्रह बुध की उत्तर क्रान्ति की गति घट रही है, इसलिये जिस समय दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग २ अंश ३७ कला और ३० विकला का अन्तर दोनों ग्रहों में होगा, उस समय से लेकर दृष्टियोग होने के समय तक निश्चित होता है। वह अवधि ता० ११ मंगलवार को १२'।२२' से ता० १२ बुधवार को १६'।५९' तक निश्चित होती है। ता० ११ में तेजी के योगों की प्रबलता से इस दृष्टि योग को अवसर नहीं मिला। आज ता० १२ बुधवार को इस दृष्टियोग की मन्दी हुई।

ता० १३ जुलाई १९५० गुरुवार। फल १४ तेजी
१—मंगल-नेपच्यून की भावी राशियुति।
अंशान्तर०। समय ता० १४ शुक्रवार ५'।३०'।

मंगल केन्द्रेश होने से शुभ है और नेपच्यून षष्ठेश होने से अशुभ है। नेपच्यून उत्तरशर में होने से विजयी है। नेपच्यून की दक्षिणक्रांति की गति बढ़ रही है; इसलिये राशियुति होनेसे पहिले दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग ३ अंश ३० कला का अन्तर दोनों ग्रहों में जिस समय होगा, उस समय से लेकर दृष्टियोग होने के समय तक मंदी का सूचक है। वह समय ता० ७ शुक्रवार को

५'।१७,६" से ता० १४ शुक्रवार को ५'।३०' तक का निश्चित होता है।

२—चन्द्र-हर्शल की भावी राशियुति।
अंशान्तर०। समय १७'।३०'।

चन्द्रमा केन्द्राधिपति होनेसे और हर्शल त्रिकोणाधिपति होने से शुभ है। दोनों ही शुभग्रह हैं; इसलिये जयपराजय का नियम लागू नहीं होता। दोनों की उत्तरक्रांतिकी गति घट रही है; इस कारण राशियुति होने से पहिले दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग २ अंश ३० कला का अन्तर दोनों ग्रहों में जिस समय होगा, वहां से लेकर दृष्टियोग होनेके समय तक तेजी करनेवाला है। वह समय ता० १३ गुरुवार को १२'।२०'।१५" से १७'।३३' तक है।

उपर्युक्त दोनों दृष्टियोग समानकोटि के हैं। एक का फल मंदी और दूसरे का फल तेजी है। परन्तु चन्द्र-हर्शल की राशियुति निरवकाश है-उसे दूसरा समय अपना फल करने को नहीं मिलता। मंगल नेपच्यून की राशियुति को फिर भी अवसर मिल सकता है। अतः चन्द्र-हर्शल की राशियुति की ही तेजा हुई।

ता० १४ जुलाई १९५० शुक्रवार। फल २७ तेजी

१—सूर्य-गुरु की अष्टमांशरहित दृष्टि। अंशान्तर
१३५। समय १८'।३५'।

सूर्य आयेश होने से और गुरु तीसरे तथा छठे स्थान का स्वामी होने से अशुभ है। गुरु के वक्री होने के कारण यह

दृष्टियोग यद्यपि अशुभ फल का सूचक है; परन्तु यह दृष्टियोग त्रिकोण में हो रहा है; इसलिये शुभफलकारक हो जाता है। गुरु द्रष्टा और सूर्य दृश्य है। सूर्य की उत्तरक्रान्ति की गति घट रही है; इस कारण दोनों ग्रहों में जिस समय दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग २ अंश ३७ कला और ३० विकला का अन्तर होगा, उस समय से लेकर दृष्टियोग होने के समयतक तेजी करनेवाला है। वह समय ता० १२ बुधवार को ६'।५०' से ता० १४ शुक्रवार को १८'।३५' तक है।

२—बुध-शुक्र की भावी दशमांशदृष्टि। अंशान्तर
३६। समय ता० १५ शनिवार ३'।१८'।

लग्नेश तथा त्रिकोणेश का यह दृष्टियोग शुभ है। दोनों का द्विर्द्वादशस्थान-सम्बन्ध भी शुभ है। शुक्र द्रष्टा और बुध दृश्य है। दृश्यग्रह बुध की उत्तरक्रान्ति की गति घट रही है; इसलिये दृष्टियोग होने से पहिले, जिस समय बुध-शुक्र में दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग ४२ कला का अन्तर होगा, उस समय से लेकर दृष्टियोग होने के समय तक तेजी का द्योतक है। वह समय ता० १४ शुक्रवार को ८'।४७ से ता० १५ शनिवार को ३'।१८' तक है।

सारांश—आज के दोनों ही दृष्टियोग तेजी के थे; इस लिये तेजी हुई।

ता० १७ जुलाई १६५० सोमवार। फल १६५ तेजी

१—बुध नेपच्यून की पञ्चमांश दृष्टि। अंशान्तर ७२।

समय १६°।४७'।

बुध शुभग्रह है और नेपच्यून अशुभग्रह। दोनों की यह पञ्चमांशनामक दृष्टि शुभ है। एक दूसरे से तीसरे और ग्यारहवें स्थान में स्थित हैं, इस कारण भी यह दृष्टियोग शुभ है। बुध द्रष्टा और नेपच्यून दृश्य है। नेपच्यून की दक्षिणक्रान्ति की गति बढ़ रही है, इसलिये दृष्टियोग होने से पहिले, दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग १ अंश २४ कला के बराबर अन्तर दोनों ग्रहों में जिस समय होगा, वहाँ से लेकर दृष्टियोग होने के समय तक तेजी करनेवाला है। वह समय ता० १७ सोमवार को ८°।१६' से १६°।४७' तक है। अतएव आज तेजी हुई।

ता० १८ जुलाई १६५० मंगलवार। फल १३४ मंदी

१—चन्द्र-गुरु की प्रतियोगदृष्टि। अंशान्तर १८०।

समय १०°।११'।

चन्द्र दशमेश होने से शुभ और गुरु तृतीय तथा षष्ठ स्थान का स्वामी होने से अशुभग्रह है। दोनों का यह दृष्टियोग अशुभ है। चन्द्र द्रष्टा और गुरु दृश्य है। अतएव शुभफल प्राप्त होता है, किन्तु दृश्यग्रह गुरु के वक्री होने से विपरीत फल अर्थात् तेजी की जगह मंदी करनेवाला है। यद्यपि दृश्यग्रह गुरु की दक्षिणक्रान्ति की गति बढ़ रही है, इसलिये दृष्टियोग होने से पहिले पूर्वोक्त नियमानुसार फल होना चाहिये था; परन्तु गुरु के वक्री होने के कारण दृष्टियोग हो जाने के बाद दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग ३ अंश ३० कला का अन्तर जिस समय तक होगा, उस समय तक मंदी करनेवाला है। वह समय ता० १८ मंगलवार को १०°।११' से १६°।२३'।५१" तक है।

२—चन्द्र-गुरु का क्रान्त्यंशसाम्य। अंशान्तर ०।

समय १३°।२१'।

शुभाशुभग्रहों के क्रान्त्यंशसाम्य में चन्द्रमा उत्तरदिशा में रहने के कारण विजयी हो जाता है। किन्तु वक्री गुरु के साथ दृष्टियोग होने से उस समय दोनों ग्रहों में होनेवाली प्रतियोग दृष्टि को ही प्रबलरूप दे देता है। इसका प्रभावकाल पूर्वोक्त क्रमानुसार ता० १८ मंगलवार को १३°।२१' से १४°।२०'।२३" तक का है, जो इष्टकाल १४°।०' पर विद्यमान था। अतएव आज विशेष मंदी हुई।

विशेष:—१ मङ्गल-प्लूटो की षडंश दृष्टि तथा २ बुध-मङ्गल की पञ्चमांशदृष्टि भी ता० १८ मङ्गलवार को तेजी करनेवाली थीं। परन्तु ये दोनों दृष्टियाँ चन्द्र-गुरु की प्रतियोगदृष्टि और क्रान्त्यंशसाम्य की अपेक्षा दुर्बल थीं, इसलिये इन दोनों दृष्टियों को तेजी करने का आज अवसर नहीं मिला।

ता० १९ जुलाई १९५० बुधवार । फल ३७ तेजी

१—बुध-हर्शल की द्वादशांश दृष्टि । अंशान्तर ३० ।
समय १७°।४५' ।

दोनों त्रिकोणस्थानों के अधिपति हर्शल और बुध का यह शुभदृष्टियोग है । हर्शल द्रष्टा और बुध दृश्य है। दृश्यग्रह बुध की उत्तरक्रान्ति की गति घट रही है, इसलिये दृष्टियोग होने से पहिले दोनों ग्रहों में जिस समय दृष्टि-दीप्तांशों के अर्धभाग ३५ कला का अन्तर होगा, उस समय से लेकर दृष्टियोग होने के समय तक तेजी करनेवाला है । वह समय आज प्रातः १०°।१५' से १७°।४५' तक है ।

२—शनि-मङ्गल का भावी क्रान्त्यंशसाम्य । अंशान्तर ०। समय ता० २० गुरुवार ३°।४४' ।

दोनों शुभग्रहों का यह दृष्टियोग शुभ है। शनि की उत्तरक्रान्ति की घट रही है और मङ्गल की दक्षिणक्रान्ति की गति बढ़ रही है, इसलिये प्रभावकाल के निर्णयक्रम से इन दोनों ताराग्रहों में शनि उत्तरशर में होने के कारण विजयी हो कर ता० १८ मंगलवार को १०°।२६' से ता० २० गुरुवार को ३°।४४' तक तेजी करनेवाला है। ता० १८ में इस दृष्टियोग की तेजी इसलिये नहीं हुई कि, चन्द्रगुरु का क्रान्त्यंशसाम्य निरवकाश था। अतएव इस दृष्टियोग को आज ही तेजी करने का अवसर मिला।

ता० २० जुलाई १९५० गुरुवार । फल २१ तेजी

आज भिन्नराशिस्थ ग्रहों का कोई दृष्टियोग नहीं है । लग्नस्थित चन्द्र के साथ नेपच्यून की चत्वारिंशांशनामक ९ अंश के अन्तर की शुभ दृष्टि और लग्न से ग्यारहवें स्थान में स्थित बुध-प्लूटो की भी चत्वारिंशांश दृष्टि हो रही है। दोनों दृष्टियां शुभ हैं । इष्टकाल पर ये दृष्टियां हो रही है, इसलिये आज तेजी हुई ।

ता० २१ जुलाई १९५० शुक्रवार । फल ११ मंदी

१—बुध—शनि की दशमांशदृष्टि । अंशान्तर ३६ ।
समय १४°।४१' ।

केन्द्र—त्रिकोणाधिपति शनि और द्वितीय त्रिकोणाधिपति बुध का यह दृष्टियोग तो शुभ है । किन्तु दोनों ग्रहों में जो द्विर्द्वादशस्थान का सम्बन्ध हो रहा है, वह अशुभ है । इसलिये शुभ दृष्टियोग होते हुए भी साधारण मंदी का द्योतक है । बुध द्रष्टा और शनि दृश्य है । शनि की उत्तर क्रान्ति की गति घट रही है, इस कारण दृष्टियोग होने से पहिले दोनों ग्रहों में जिस समय दृष्टिदीप्तांश के अर्धभाग ४२ कला के तुल्य अन्तर होगा, वहां से लेकर दृष्टियोग होने के समय तक मंदी करने वाला यह दृष्टियोग है । वह समय आज प्रातः ५°।३०' से १४°।४१' तक है ।

आज विशेषरूप से ध्यान देने की बात यह है कि, राफाइल की 'एफीमरी' में चंद्र-प्लूटो की षडंशदृष्टि और चन्द्र-मंगल की

राशियुति का जो समय दिया गया है, वह अशुद्ध है—उस समय से पहिले ही ये दृष्टियां हो चुकी हैं। इष्टकाल के स्पष्ट ग्रहों के गणित से यह बात स्पष्ट हो जाती है। इसलिये निर्णय-कर्ता को दैनिक ग्रहगणित साधन करके ही दृष्टियोगों के समय तथा शुभाशुभ फल का निर्णय करना श्रेयस्कर होगा। अन्यथा कुछ का कुछ फल निश्चय होगा और उससे कार्य में हानि होगी।

ता० २४ जुलाई १९५० सोमवार। फल २६ तेजी

१—बुध-प्लूटो की एक ही राशि में भावी युतिदृष्टि। अंशान्तर ०। समय ता० २५ जुलाई मंगलवार १०'।४८'।

दोनों शुभग्रहों का यह शुभ दृष्टियोग है। दोनों ग्रहों की उत्तर क्रान्ति की गति घट रही है, इसलिये दोनों ग्रहों में जिस समय दृष्टि-दीप्तांशों के अर्धभाग ३ अंश और ३० कला का अन्तर होगा, उस समय से लेकर दृष्टियोग (राशियुति) होने के समय तक तेजी करनेवाला यह दृष्टियोग है। वह समय ता० २३ रविवार को १२'।२' से ता० २५ मंगलवार को १०'।४८' तक है।

विशेष:—राशिकुण्डली में आयेश सूर्य के साथ बुध-प्लूटो का सहावस्थान-सम्बन्ध हो रहा है, किन्तु दोनों ग्रह सूर्य से अधिक दूर हैं—युतिदृष्टि के दीप्तांशों के बाहर हैं। इसलिये सूर्य का इन दोनों ग्रहों पर कोई प्रभाव नहीं है। यदि स्थूलरूप से एक राशिमें सहावस्थान-सम्बन्धको मान भी लिया जाय, तो भी सूर्य तथा

बुध-प्लूटो में इष्टकाल पर १४ अंश २७ कला और ३० विकला का अन्तर है, जिससे यहां पर एक ही राशि में होनेवाला चतुर्विंशांश नामक शुभ दृष्टियोग हो रहा है, इस कारण सूर्य का सहावस्थान-सम्बन्ध भी तेजीकारक ही है।

२—मंगल-गुरु की भावी अष्टमांशरहित दृष्टि। अंशान्तर १३५। समय ता० २६ बुधवार ३'।२४'।

मंगल केन्द्रेश होने से शुभ और गुरु तृतीय तथा षष्ठस्थान का अधिपति होने से अशुभ ग्रह है। दोनों ग्रहों में जो षडष्टक हो रहा है, वह भी अशुभ है। किन्तु गुरु के वक्री होने के कारण शुभ-फल (तेजी) करनेवाला यह दृष्टियोग है। मंगल द्रष्टा और गुरु दृश्यग्रह है। गुरु की दक्षिणक्रान्ति की गति बढ़ रही है; इसलिये दृष्टियोग होने से पहिले दोनों ग्रहों में जिस समय दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग २ अंश ३७ कला और ३० विकला का अन्तर होगा, उस समय से लेकर दृष्टियोग होने तक तेजी का सूचक है। वह समय ता० २२ शनिवार को ०'।११' से ता० २६ बुधवार को ३'।२४' तक का निश्चित होता है।

ता० २५ जुलाई १९५० मंगलवार। फल २२ तेजी

१—मङ्गल-गुरुका भावी अष्टमांशरहित दृष्टियोग।

अंशान्तर १३५। समय ता० २६ जुलाई
बुधवार ३°।२४'।

इस दृष्टियोग का विवरण ता० २४ सोमवार के निर्णय में आ चुका है। आज भी इस दृष्टियोग की तेजी का अवसर है।

२—सूर्य-नेपच्यून की भावी पञ्चमांशदृष्टि।
अंशान्तर७२। समय ता० २६ बुधवार ४°।१५'।

दोनों अशुभ ग्रहों का यह दृष्टियोग शुभ है। एक दूसरे से तृतीय-एकादशस्थान में स्थित हैं, इसलिये भी यह दृष्टियोग शुभ है। सूर्य द्रष्टा और नेपच्यून दृश्य है। नेपच्यून की दक्षिणक्रान्ति की गति बढ़ रही है, इस कारण दृष्टियोग होने से पहिले जिस समय इन दोनों ग्रहों में दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग १ अंश २४ कला का अन्तर होगा, उस समय से लेकर दृष्टियोग होने के समय तक यह दृष्टियोग तेजी करनेवाला है। वह समय ता० २४ सोमवार को १६°।४१' से ता० २६ बुधवार को ४°।१५' तक निश्चित होता है।

३—शुक्र-शनि की भावी पञ्चमांशदृष्टि।
अंशान्तर ७२। समय ता० २६ जुलाई बुधवार ६°।५२'।

लग्नेश तथा केन्द्र-त्रिकोणाधिपति शनि का यह दृष्टियोग शुभ है। एक दूसरे से तृतीय-एकादशस्थान में स्थित हैं, इस

लिये भी यह दृष्टियोग शुभ है। शुक्र द्रष्टा और शनि दृश्यग्रह है। शनि की उत्तर क्रान्ति की गति घट रही है, इस कारण दृष्टियोग होने से पहिले दोनों ग्रहों में जिस समय दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग १ अंश २४ कला का अन्तर होगा, उस समय से लेकर दृष्टियोग होने के समय तक यह दृष्टियोग तेजी करनेवाला है। वह समय ता. २५ मंगलवार को ८°।०' से ता. २६ बुधवार को ६°।५२' तक है।

४—चन्द्र-प्लूटो की भावी दैनिक त्रिकोणदृष्टि।
अंशान्तर १२०। समय १४°।४०'।

दोनों शुभ ग्रहों का यह दृष्टियोग शुभ है। प्लूटो द्रष्टा और चन्द्र दृश्य है। चन्द्र-प्लूटो में जिस समय दृष्टि—दीप्तांश के अर्धभाग २ अंश २० कला का अन्तर रहेगा, उस समय से लेकर दृष्टियोग होने के समय तक यह दृष्टियोग तेजी करनेवाला है। वह समय आज प्रातः १०°।४८'।५" से १४°।४०' तक है।

५—चन्द्र-बुध की भावी दैनिक त्रिकोणदृष्टि।
अंशान्तर १२०। समय १५°।१३'।

केन्द्र—त्रिकोणाधिपति बुध—चन्द्र का यह दृष्टियोग चन्द्र-प्लूटो की त्रिकोणदृष्टि से बलवान् और विशेष शुभ है। इस दृष्टियोग का प्रभावकाल पूर्वोक्त निर्णयक्रम के अनुसार आज प्रातः १०°।४८'।५५" से १५°।१३' तक का निश्चित होता है।

३—शुक्र-हर्शल की भावी राशियुति-संयोगदृष्टि।

अंशान्तर०। समय ता० २८ जुलाई शुक्रवार ६°।४'।

लग्नेश शुक्र तथा त्रिकोणेश हर्शल की यह एकराशि में होने वाली युति लग्न से दशम स्थान में होने के कारण विशेष शुभ है। दोनों ग्रहों की उत्तर क्रान्ति की गति घट रही है, इसलिये दोनों ग्रह मिलकर एकसाथ आपस में जिस समय दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग ३ अंश ३० कला के अन्तर पर होंगे, उस समय से लेकर दृष्टियोग होने के समय तक तेजी करनेवाले हैं। वह समय ता० २५ मंगलवार को ७°।४२' से ता० २८ शुक्रवार को ६°।४' तक है।

सारांश यह कि, आज के अतीत, विद्यमान तथा भावी सभी दृष्टियोग तेजी के सूचक थे, इसलिये तेजी हुई।

ता० २६ जुलाई १६५० बुधवार। फल ६२ तेजी

१—शुक्र-हर्शल की भावी संयोगदृष्टि।

अंशान्तर ०। समय ता० २८ शुक्रवार ६°।४'।

इस दृष्टियोग का विवरण ता०२५ जुलाई मंगलवार के दृष्टियोगों के निर्णय में हो चुका है। यह दृष्टियोग तेजी का सूचक है।

२—शुक्र-गुरु की भावी त्रिकोणदृष्टि।

अंशान्तर १२०। समय ता० २७ जुलाई गुरुवार को १२°।१५'।

दोनों में शुक्र शुभग्रह और गुरु अशुभ ग्रह है। दोनों का यह दृष्टियोग तो स्वभावतः शुभ है, किन्तु गुरु के वक्री होने के कारण अशुभ फल करनेवाला है। गुरु द्रष्टा और शुक्र दृश्य है। शुक्र की उत्तर क्रान्ति की गति घट रही है, इसलिये दृष्टियोग होने से पहिले दोनों ग्रहों में जिस समय दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग २ अंश २० कला का अन्तर होगा, वहाँ से लेकर दृष्टियोग होने के समय तक मंदी करनेवाला है। यह समय ता० २५ मंगलवार को १६°।४०' से ता० २७ जुलाई गुरुवार को १२°।१५' तक है।

सारांश—आज के दोनों दृष्टियोगों में शुक्र-हर्शल का राशि-युतिनामक दृष्टियोग ही प्रबल था, इसलिये तेजी हुई।

ता० २७ जुलाई १६५० गुरुवार। फल ७ तेजी

१—शुक्र-हर्शल की भावी संयोगदृष्टि।

अंशान्तर ०। समय ता० २८ जुलाई शुक्रवार ६°।४'।

ता० २५ जुलाई मंगलवार के दृष्टियोगों के विवरण में इस दृष्टियोग का निर्णय हो चुका है। तदनुसार यह दृष्टियोग तेजी करनेवाला है।

२—बुध-मङ्गल की भावी षष्ठांशदृष्टि।

अंशान्तर ६०। समय ता० २८ शुक्रवार ६°।७'।

दोनों शुभग्रहों का यह दृष्टियोग शुभ है। बुध द्रष्टा और मंगल दृश्य ग्रह है। मंगल की दक्षिण क्रान्ति की गति बढ़ रही है, इस कारण दृष्टियोग होने से पहिले जिस समय दोनों ग्रहों में दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग १ अंश १० कला का अन्तर होगा, उस समय से लेकर दृष्टियोग होने के समय तक तेजी करनेवाला है। वह समय ता० २७ गुरुवार को ११।२०' से ता० २८ शुक्रवार को ६।८' तक का है।

इन दोनों दृष्टियोगों के अतिरिक्त बुध-शुक्र तथा बुध-हर्शल के भावी केन्द्रार्धनामक दो अशुभ दृष्टियोगों का प्रभाव-काल भी आज विद्यमान था, परन्तु उपर्युक्त दोनों दृष्टियोगों की प्रबलता से तेजी तो हुई पर कम मात्रा में हुई।

ता० २८ जुलाई १९५० शुक्रवार। फल ६ तेजी

१—शनि मङ्गल की भावी दशमांशदृष्टि।

अंशान्तर ३६। समय ता० २९ शनिवार ११'। ८'।

दोनों शुभ ग्रहों का यह दृष्टियोग शुभ है। दोनों ग्रहों में जो द्विर्द्वादशस्थान—सम्बन्ध हो रहा है, वह भी शुभ है। शनि द्रष्टा और मङ्गल दृश्य है। मङ्गल की दक्षिण क्रांति की गति बढ़ रही है; इस लिये दृष्टियोग होने से पहिले दोनों ग्रहों में जिस समय दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग ४२ कला का अन्तर होगा, उस समय से लेकर दृष्टियोग होने के समय तक तेजी करनेवाला है। वह समय ता० २७ गुरुवार को २०।५' से ता० २९ शनिवार को ११'।८' तक है। आज यही एक दृष्टि योग था, जिससे तेजी हुई।

ता० ३१ जुलाई १९५० सोमवार। फल ४२ मंदी

१—चन्द्र—गुरु का क्रान्त्यंशसाम्य।

अंशान्तर ०। समय प्रातः ७'। ३९'।

चन्द्र शुभ ग्रह और गुरु अशुभ ग्रह है। दोनों में जयपराजय के नियमानुसार गुरु विजयी हो जाता है। गुरु की दक्षिण क्रान्ति की गति यद्यपि बढ़ रही है, परन्तु गुरु के वक्री होने के कारण प्रभाव-काल के नियम के विपरीत—दृष्टियोग हो जाने के बाद अपने दीप्तांश के अर्धभाग की अवधि तक—ता० ३१ जुलाई सोमवार से ता० २ अगस्त बुधवार तक मंदी का सूचक है।

ता० १ अगस्त १९५० मंगलवार। फल ४१ मंदी

राशि कुण्डली
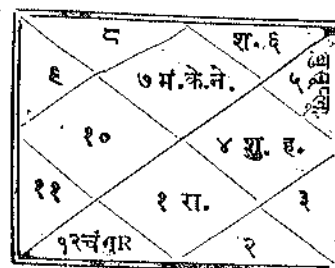
नवांश कुण्डली
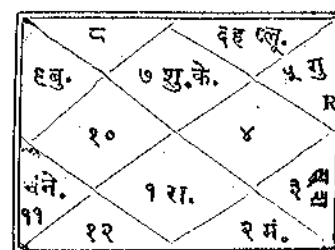
इन कुण्डलियों में जिस ग्रह के साथ (R) यह चिह्न लगा हो, उसे वक्री समझना चाहिये।

आज के दृष्टियोग और उनका विवरण।

१—चन्द्र-शनि की षष्ठ्यंशरहितदृष्टि ।

अंशान्तर १७४ । समय १३॰।१६'।५४" ।

केन्द्र-त्रिकोणाधिपति चन्द्र-शनि का यह दृष्टियोग दोनों में परस्पर पूर्णदृष्टि होने से तेजी करनेवाला सिद्ध होता है। किन्तु यहाँ पर शनि द्रष्टा और चन्द्र दृश्य हो जाता है । दृश्यग्रह चन्द्र इष्टकाल पर वक्री गुरु के साथ सहावस्थान-सम्बन्ध कर रहा है और साथही एक राशिगत विंशांशदृष्टि भी कर रहा है, इसलिये तेजी के बदले मंदीकारक हो जाता है। चन्द्र की दक्षिण क्रान्ति की गति घट रही है; इस कारण दृष्टियोग हो जाने के बाद, दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग ३ अंश २३ कला का अन्तर जिस समय तक रहेगा; मंदीकारक है। वह समय आज १३'। १६'। ५४" से १९'। ३'। १७" तक है।

२—बुध—नेपच्यून की भावी अष्टमांशरहितदृष्टि ।

अंशान्तर ४५ । समय २०॰।३७'।

त्रिकोणेश बुध के साथ षष्ठेश नेपच्यून का यह अशुभ दृष्टि-योग है । बुध द्रष्टा और नेपच्यून दृश्य है। नेपच्यून की दक्षिण क्रान्ति की गति बढ़ रही है; इसलिये दृष्टि-योग होने से पहिले, दोनों ग्रहों में जिस समय दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग ५२ कला और ३० विकला का अन्तर होगा, उस समय से लेकर दृष्टियोग होने के समय तक मंदी करनेवाला है । किन्तु यह दृष्टियोग

त्रिरेकादशस्थानस्थित ग्रहों का हो रहा है; इस कारण साधारण तेजी करनेवाला है। वह समय आज ०॰।२२'।३६" से २०॰।३७' तक का है।

सारांश—बुध-नेपच्यून की भावी अष्टमांशरहित दृष्टि से चन्द्र-शनि की षष्ठ्यंशरहित दृष्टि की प्रबलता से आज मंदी हुई।

ता० २ अगस्त १९५० बुधवार । फल ५० मंदी

राशि कुण्डली

८ | ६ बु. श. | ९ | ७ के. ने. मं. | १० | ह. ४ शु. | ११ | १ चं. रा. | १२ गु R | २

नवांशकुण्डली

आज के दृष्टियोग और उनका विवरण ।

१—शुक्र—नेपच्यून की भावी केन्द्र दृष्टि ।

अंशान्तर ९० । समय ता० ३ अगस्त गुरुवार २३॰।४१'।

लग्नेश शुक्र शुभग्रह और षष्ठेश नेपच्यून अशुभग्रह है। दोनों का यह अशुभ दृष्टियोग है । शुक्र द्रष्टा और नेपच्यून दृश्य है। नेपच्यून की दक्षिण क्रान्ति की गति बढ़ रही है; इसलिये दृष्टियोग होने से पहिले दोनों ग्रहों में जिस समय दृष्टिदीप्तांश के अर्धभाग १ अंश ४५ कला का अन्तर होगा; उस समय से लेकर

दृष्टियोग होने के समय तक यह दृष्टियोग मंदी करनेवाला है। वह समय ता० २ बुधवार को ५'।२४'।२५" से ता ३ गुरुवार को २३'।४१' तक है।

२—बुध-गुरु की अतीत षष्ठ्यंशरहित दृष्टि। अंशान्तर १७४। समय ता० १ मंगलवार१८'।१४'।

शुभाशुभ ग्रहों का यह दृष्टियोग अशुभ है। बुध द्रष्टा और गुरु दृश्यग्रह है। गुरुकी दक्षिणक्रान्ति की गति बढ़ रही है, किन्तु गुरु के वक्री होने से दृष्टियोग हो जाने के बाद दोनों ग्रहों में जिस समय दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग ३ अंश २३ कला का अन्तर रहेगा, वहां तक मंदी करनेवाला है। वह समय ता १ मंगलवार को १८'।१४' से ता० ३ गुरुवार को प्रातः ७ बजे तक है।

३—चन्द्र-हर्शल की भावी केन्द्रदृष्टि। अंशान्तर ९०। समय १६'।९'।

दोनों शुभग्रहों का यह दृष्टियोग अशुभ है। चन्द्र द्रष्टा और हर्शल दृश्य है। हर्शल की उत्तरक्रान्ति की गति घट रही है; इसलिये दृष्टियोग होने से पहिले, जिस समय दोनों ग्रहों में दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग १ अंश ४५ कला का अन्तर होगा, उस समय से लेकर दृष्टियोग होने के समयतक मंदी करनेवाला है। वह समय आज १२'।४७'।८' से १६'।९' तक है।

सारांश—आज के तीनों ही दृष्टियोग मंदीके थे; इस लिये मंदी हुई।

ता० ३ अगस्त १९५० गुरुवार। फल २५ मंदी

राशिकुण्डली

नवांशकुण्डली
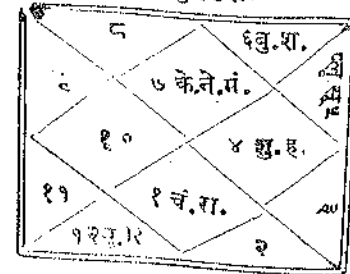
आज के दृष्टियोग और उनका विवरण।

१—शुक्र-नेपच्यून की भावी केन्द्रदृष्टि। अंशान्तर ९०। समय २३'।४१'।

इस दृष्टियोग का विवरण ता० २ अगस्त बुधवार के दृष्टियोगों के साथ लिखा जा चुका है। यह दृष्टियोग मंदी का सूचक है। आज भी इस दृष्टियोग को मंदी करने का अवसर है।

२—सूर्य-शनि की भावी दशमांशदृष्टि। अंशान्तर ३६। समय ता० ४ शुक्रवार ८'।३७'।

शुभाशुभ ग्रहों का यह दृष्टियोग तो शुभ है। किन्तु दोनों में जो द्विर्द्वादशस्थान का सम्बन्ध हो रहा है, वह अशुभ है। सूर्य द्रष्टा और शनि दृश्य है। शनिकी उत्तरक्रान्ति की गति घट रही है; इसलिये दृष्टियोग होने से पहिले, दोनों ग्रहों में जिस समय

दृष्टि-दीप्तांश के अर्धभाग ४२ कला का अन्तर होगा, उस समय से लेकर दृष्टियोग होने के समय तक मंदी करनेवाला है। वह समय ता० ३ गुरुवार को १३'।१'।११" से ता० ४ शुक्रवार को ८'।२७' तक है।

सारांश—आज के दोनों ही दृष्टियोग मंदी के थे; इसलिये मंदी हुई।

ता ४ अगस्त १९५० शुक्रवार। फल २० मंदी

राशिकुण्डली

नवांशकुण्डली

आज के दृष्टियोग और उनका विवरण।

आज एफीमरी (अंग्रेजी पञ्चांग) में दिये हुए दृष्टियोगों में से इष्टकाल पर कोई दृष्टियोग नहीं था। केवल चन्द्र-नेपच्यून की त्रिशांशरहित अशुभ दृष्टि थी; इसलिए मंदी हुई।

श्री विश्वेश्वर प्रेस, बुलानाला, बनारस सिटी।